सह्याद्रि की चट्टानें

(ऐतिहासिक उपन्यास)

आचार्य चतुरसेन

प्रभात प्रकाशन

दिल्ली * मथुरा

प्रकाशक :

प्रभात प्रकाशन

२०५, चावड़ी बाजार

दिल्ली

**

लेखक :

आचार्य चतुरसेन

**

प्रथम संस्करण

१९६०

**

मुद्रक :

बम्बई भूषण प्रेस

मथुरा

**

मूल्य :

तीन रुपया

१

पहिली भेंट

रात बहुत अंधेरी थी। रास्ता पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ था। आकाश पर बदली छाई हुई थी, और अभी कुछ देर पूर्व जोर की वर्षा हो चुकी थी। जब जोर की हवा से वृक्ष और बड़ी-बड़ी घास सांय-सांय करती थी, तब जंगल का सन्नाटा और भी भयानक मालूम होता था।

इस समय उस जंगल में दो घुड़सवार बढ़े चले जारहे थे। दोनों के घोड़े खूब मजबूत थे, पर वे पसीने में लथपथ थे। घोड़े पग-पग पर ठोकरें खाते थे, पर उन्हें ऐसे बीहड़ रास्तों में, ऐसे संकट के समय, अपने स्वामी को ले जाने का अभ्यास था। सवार भी असाधारण धैर्यवान् और वीर पुरुष थे। वे चुपचाप चल रहे थे। घोड़ों की टापों और उनकी प्रगति से कमर में लटकती हुई उनकी तलवारों और बर्छों की खरखराहट उस सन्नाटे के आलम में एक भयपूर्ण रव उत्पन्न कर रही थी।

हठात् घोड़े ने एक ठोकर खाई, और एक मंद आर्त्त-नाद अग्रगामी सवार के कान में पड़ा। उसने घोड़े की बाग खींचते हुए कहा—"धांधूजी!"

"महाराज !"

पीछे आने वाला सवार क्षण भर में अग्रगामी सवार के सन्निकट आगया, और उसने बिजली की भांति अपनी तलवार खींच ली। अग्रगामी सवार का घोड़ा खड़ा हो गया था। उसने भी तलवार नंगी करके कहा— "देखो, क्या है ? घोड़े ने ठोकर खाई है, यह आर्त्तनाद कैसा है ?"

धांधूजी घोड़े से उतर पड़े, उन्होंने झुककर देखा और कहा— "महाराज, एक मनुष्य है ।"

"क्या घायल है ?"

"खून में लथपथ प्रतीत होता है।"

"जीवित है ?"

इसी समय पड़े हुए व्यक्ति ने फिर आर्त्तनाद किया । महाराज उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही घोड़े से कूद पड़े । उन्होंने धांधूजी को प्रकाश करने का आदेश दिया, और स्वयं मार्ग में पड़े व्यक्ति के सिर-हाने घुटनों के बल बैठ गए। उन्होंने उसका सिर गोद में रख लिया, नाड़ी देखी, हृदय का स्पंदन देखा, और कहा—"जीवित है। पर मालूम होता है, बहुत घाव खाए हैं, रक्त बहुत निकल गया है।"

धांधूजी ने तब तक चकमक पत्थर से अबरख की बनी चोर-लालटेन जला ली थी। वह उसे घायल के मुख के पास लाए। देखकर कहा—"अरे, बड़ा अल्पवयस्क बालक है !"

"परन्तु अंग-अंग में घाव हैं, मालूम होता है, वीरतापूर्वक युद्ध किया है।"

मुमूर्षु ने प्रकाश और मनुष्य-मूर्ति को देखा, और जल का संकेत किया। महाराज ने स्वयं उसके मुख में जल डाला । जल पीकर उसने आंखें खोलीं, और क्षीण स्वर में कहा—"आप कौन हैं, प्राणरक्षक ?" और फिर कुछ ठहर कर कहा—"आप चाहे जो भी हों, यह प्राण और शरीर आपके हुए।" उसके होठों पर मंद हास्य की रेखा आई।

महाराज ने कहा—"धांधूजी, इसका रक्त बंद होना चाहिए। देखिए, सिर से अब तक रक्त वह रहा है। और, पार्श्व का यह घाव भी भयानक है।" इसके वाद दोनों व्यक्तियों ने उसके सभी घाव बांधकर उसे स्वस्थ किया। फिर वे सलाह करने लगे—"अब इसे कहां ले जाया जाय ? समय कम है और हमारा गंतव्य पथ लम्बा।"

युवक ने स्वयं कहा—"यदि मुझे घोड़े पर बैठा दिया जाय, तो मैं मजे में चल सकूंगा।"

"क्या निकट कोई गांव है ?"

"है, पर एक कोस के लगभग है।"

"वहां कोई मित्र है ?"

"है। वहां मेरी बहन का घर था, बहनोई हैं।" युवक का स्वर कंपित था।

महाराज ने कहा—"वहिन नहीं है ?"

"नहीं।" युवक का कंठ अवरुद्ध हुआ। उसके नेत्रों से झर-झर आंसू वहने लगे। वह फिर बोला—"उसे आज तीसरे पहर विदा कराके घर ले आ रहा था। वहनोई उस बाग तक साथ आए थे। उन्हें लौटते देर न हुई, ज्यों ही हम लोग इस खेड़े के निकट पहुंचे, कोई पांच सौ यवन सैनिकों ने धावा वोल दिया। मेरे साथ केवल आठ आदमी थे। शायद सभी मारे गए। मैंने यथासाध्य विरोध किया, पर कुछ न कर सका, वे वहन का डोला ले गए। मैंने मूर्च्छित होने से पूर्व अच्छी तरह देखा, पर मैं तलवार पकड़ ही न सका, फिर मेरी तलवार टूट भी गई थी।" युवक उद्वेग से मानो मूर्छित हो गया। महाराज ने होंठ चवाया। एक बार उन्होंने अपने सिंह के समान नेत्रों से उस चोर-लालटेन के प्रकाश में चारों ओर देखा—टूटी तलवार, वर्छा, दो-चार लाशें और रक्त की धार।

उन्होंने युवक से कहा—"तुम्हारे घर पर कौन है ?"

"वृद्धा विधवा माता ।"

"गांव कौन है ?"

"मौरावां ।"

"दूर है ?"

"आठ कोस होगा ।"

"तुम्हारा नाम ?"

"तानाजी ।"

"घोड़े पर चढ़ सकोगे ?"

"जी ।"

महाराज और धांवूजी ने युवक को घोड़े पर लादा । धांवूजी उसके पीछे बैठे, और महाराज भी अपने घोड़े पर सवार हुए ।

इस बार ये यात्री अपना पथ छोड़कर युवक के आदेशानुसार गांव की ओर बढ़े, पगडंडी संकरी और बहुत खराब थी । जगह-जगह पानी भरा था, पर जानवर सधे हुए और बहुत असील थे । धीरे-धीरे गांव निकट आ गया । युवक के बताए मकान के द्वार पर जाकर धांवूजी ने थपकी दी । एक युवक ने आकर द्वार खोला । धांधूजी ने उसकी सहायता से तानाजी को उतार कर घर में पहुंचाया । संक्षेप में दुर्घटना का हाल सुनकर गृहपति युवक मर्माहत हुआ । धांधूजी ने अवकाश न देखकर कहा—"तुम लोग परसों इसी समय हमारे यहां आने की प्रतीक्षा करना और घटना का कहीं भी जिक्र न करना ।"

तानाजी ने व्यग्र होकर कहा—"महोदय, आपका परिचय ? मैं किसके प्रति कृतज्ञ होऊं ?"

"छत्रपति हिंदू-कुल-सूर्य महाराजाधिराज शिवाजी के प्रति ।" धांधूजी ने अब विलम्ब न किया, वह लपककर घोड़े पर चढ़े, और दोनों असाधारण सवार उस अंधकार में विलीन हो गए ।

२

महाराष्ट्र भूमि और मराठे

महाराष्ट्र भूमि तीन भौगोलिक भागों में विभक्त है। पश्चिमी घाट और हिन्द महासागर के बीच एक लम्बी किन्तु संकरी जमीन का हिस्सा वहुत लम्वा चला गया है। इसकी चौड़ाई कहीं ज्यादा कहीं कम है। वम्वई और गोआ के बीच का प्रदेश कोंकरण कहाता है। गोआ के दक्षिरण में कन्नड़ प्रदेश है। कोंकरण में प्रति वर्ष १०० से २०० इंच तक वर्षा होती है। यहां की मुख्य उपज चावल है। आम, केले और नारियल के वाग यहां वहुत हैं। घाट पार करने पर पूर्व की ओर लगभग २० मील चौड़ा धरती का एक लम्वा टुकड़ा पड़ता है—इसे मावल कहते हैं। यहां की धरती बहुत ही ऊँची-नीची है, दूर तक टेढ़ी-मेढ़ी घाटियों में जहां-तहां समतल भूमि पाई जाती है। इसके आगे पूर्व की ओर बढ़ने पर पश्चिमी घाट की पहाड़ियों की ऊँचाई कम होने लगती है। और नदियों के कछार चौड़े और समतल होने लगते हैं। यहीं से वह प्रदेश शुरू होता है जिसे देश कहते हैं। यह दक्षिरण के मध्य में स्थित दूर तक फैला हुआ एक विस्तृत उपजाऊ मैदान है। यहां की मिट्टी काली है।

प्रकृति ने इस प्रान्त को ऐसा रूप दिया है कि विलासिता और कला वहां नहीं पनप सकती। परन्तु इन अभावों की पूर्ति वहां की जल-वायु के कारण वहां के निवासियों में आत्मविश्वास, साहस, अध्यवसाय, सादगी और सहिष्णुता के रूप में मिलती है। आत्मसम्मान और सामा-जिक समता यहाँ की आधारभूत विशेषताएँ हैं। १५वीं-१६वीं शताब्दी के लोकप्रिय सन्तों ने यहां जन्म की श्रेष्ठता की अपेक्षा चरित्र की पवित्रता को अधिक महत्व दिया, और यही कारण था कि शिवाजी को १७वीं शताब्दी में महाराष्ट्रियों की राजनैतिक एकता स्थापित करने में विशेष

कठिनाई नहीं हुई। क्योंकि उनसे पहले ही महाराष्ट्र में समान भाषा, समान धर्म और समान जीवन के आधार पर एक सुगठित जाति का निर्माण हो चुका था। शिवाजी की सेना में मराठा और कुनवी जाति के लोगों की अधिकता थी। ये जातियां निष्कपट, स्वावलम्वी, परिश्रमी और वीर थीं।

२

शाहजी भोंसले

चौदहवीं शताब्दी में जब मुसलमानों ने दक्षिण को जीता और महाराष्ट्र के अन्तिम हिन्दू राज्य का भी अन्त हो गया, तब यहां की योद्धा जातियों के छोटे-छोटे दल भिन्न नायकों के दल में संगठित हो गए, जिन्हें नए मुसलमान शासक धन देकर अपनी सहायता के लिए बुलाते रहे, और उनका सहयोग लेते रहे। इस तरह मुसलमानी राज्यों के सहयोग से कुछ मराठा घराने धन और शक्ति से सम्पन्न बन गए। ऐसा ही एक घराना भोंसले का था जो पूना प्रान्त के अन्तर्गत पाटस ताल्लुके में रहता था और वहां के दो गाँवों की पटेली भी करता था। आरम्भ में यह घराना खेती करके निर्वाह करता रहा। इसी घराने में एक पुरुष हुए, जिनका नाम मल्लूजी था। वे देशल ग्राम में रहते थे। परन्तु उनका विवाह एक ऐसे प्रतिष्ठित वंश में हुआ था जो धनवान भी था और प्राचीन भी। इस समय निजामशाही में सबसे प्रमुख मराठा घराना सामन्त लखूजी जादोराय का था। जादोराय निजामशाही में १० हजार के जागीरदार थे। उनके वंश में सदा से देशमुखी चली आती थी। मल्लूजी की ससुराल वालों का घराना दूसरे नम्बर पर था। परन्तु मल्लूजी का साला अपने समय का बड़ा नामी लड़ाका और वीर था। उसका नाम जयपाल था। वह सदा लड़ाइयाँ तथा लूटमार करता रहता था।

मल्लूजी भोंसले का बड़ा पुत्र शाहजी था। शाहजी का ब्याह

जादोराय की कन्या जीजाबाई से हुआ। जादोराय और मल्लूजी पुराने मित्र थे। एक बार वे अपने पुत्र शाहजी को संग लेकर जादोराय के घर गए। तब बालिका जीजाबाई आकर शाहजी के पास बैठ गई। जादोराय ने हंसकर कहा—"अच्छी जोड़ी है"। उसने लड़की से पूछा—"क्या तू शाहजी से ब्याह करेगी ?" यह सुनते ही मल्लूजी उछलकर खड़ा हो गया और कहा—"देखो भई, सबके सामने जादोराय ने आज अपनी कन्या का वाग्दान मेरे पुत्र शाहजी के साथ कर दिया है। अब जीजाबाई शाहजी की हुई।" परन्तु जादोराय बिगड़ गया, और इसी बात पर दोनों में अनबन भी हो गई। बाद में मल्लूजी को खेतों में गड़ा हुआ कुछ धन प्राप्त हो गया, जिससे उन्होंने कुछ घोड़े और हथियार खरीद लिए और निजामशाही की एक सेना के सेनानायक बन गए।

उन्हें पांचहजारी का मनसब भी मिल गया। बाद में अहमद-नगर के दरबारियों ने बीच में पड़कर जादोराय से उनका मेल करा दिया और अन्त में जीजाबाई का ब्याह भी शाहजी से हो गया।

मल्लूजी के मरने पर शाहजी को अहमदनगर के दरबार से अपने पिता के अधिकार और जागीर मिली। शाहजी बड़े हौसले के आदमी थे। शीघ्र ही लोगों ने देखा कि बेटा बाप से बढ़-चढ़ कर है। यह वह समय था जब बादशाह जहांगीर के सेनापति दक्षिण विजय करने की धुन में थे। और अहमदनगर के प्रसिद्ध सेनापति वजीर मलिक अम्बर उनसे लड़ रहा था। मलिक अम्बर अबीसीनिया का निवासी था। अपनी योग्यता से वह अहमदनगर की निजामशाही सेना का सेनापति व प्रधान वजीर बन गया था। वह बहुत अच्छा प्रबन्धक और मालमन्त्री तथा उच्चकोटि का सेनानायक था। उसने मराठों की सेना संगठित कर उन्हें गुरिल्ला युद्ध की शिक्षा दे सैन्य संचालन में आश्चर्यजनक उन्नति की थी। जहाँगीर ने अब्दुररहीम खानखाना को उसे परास्त करने भेजा था, पर उन्हें हार कर भागना पड़ा। तब उसने शाहजादा परवेज को

खानदेश व गुजरात के सूबेदार अब्दुल्ला के साथ भेजा। परन्तु जब इसका भी कुछ परिणाम न हुआ तो शाहजादा खुर्रम को भेजा।

यह सन् १६२० की बात है। शाहजी अपने कुटुम्बियों की एक छोटी-सी सैनिक टुकड़ी लेकर इस युद्ध में शामिल हुए, तथा बड़ी वीरता प्रकट की। उनका नाम भी प्रसिद्ध हो गया। इस युद्ध में उनके श्वसुर सामन्त लक्खूजी जादोराय भी लड़ रहे थे। यद्यपि इस युद्ध में मलिक अम्बर की पराजय हुई, पर लक्खूजी जादोराय ने और शाहजी ने जो वीरता और शौर्य का प्रदर्शन किया, उससे मुगलों की सेना में मराठों की धाक बैठ गई। मुगल सेनापति ने तब मरहठों को तोड़-फोड़ कर अपने साथ मिलाना चाहा, जादोराय मुगलों से जा मिले। वहाँ उन्हें बड़ा रुतबा और जागीर मिली, पर शाहजी ने श्वसुर का साथ नहीं दिया। वे अपनी पुरानी सरकार के साथ ही रहे।

१६२७ में जहाँगीर मर गया और इसके बाद १६२८ में शाहजहाँ बादशाह हुआ। उसने सेनापति खानजहाँ को दक्षिण से वापस बुला लिया, पर खानजहाँ से शाहजहाँ खुश न था। इसलिए वह भाग कर फिर दक्षिण आ गया और निजामशाह की शरण में पहुँचा। शाहजहाँ ने उसे पकड़ने को सेना भेजी, पर शाहजी भोंसले ने सब हिन्दू सरदारों को लेकर शाही सेना को खदेड़ दिया। इससे क्रुद्ध होकर शाहजहाँ ने खुद एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण पर चढ़ाई की। अन्ततः खानजहाँ भाग खड़ा हुआ। इसी समय मलिक अम्बर की भी मृत्यु हो गई। तब शाहजी ने भी अपनी सेवाएँ शाहजहाँ को अर्पित कर दीं। शाहजहाँ ने उन्हें छः हजारी जात का मनसब और पाँच हजार सवारों का सेनापति बना दिया। साथ ही बहुत-सी नई जागीरें भी दीं। परन्तु वह निजामशाह के शुभचिन्तक बने रहे। कुछ काल बाद निजामशाही के वजीर मलिक अम्बर के पुत्र फतहखाँ ने अपने बादशाह को कत्ल करके शाहजहाँ से सन्धि करली। तब शाहजी निजामशाही छोड़कर बीजापुर दरबार की सेवा में आ गए।

शाहजी बड़े अवसरवादी थे। वे अवसर कभी नहीं चूकते थे। इस समय उनका नाम इतना प्रसिद्ध हो गया था कि बीजापुर के आदिलशाह ने उनकी पूरी आवभगत की। यह वह समय था जब फतहखाँ ने मुगल सेनापति महावतखाँ से मिलकर बीजापुर की राजधानी दौलताबाद पर चढ़ाई की थी। शाहजी ने इस युद्ध में बड़ी वीरता प्रकट की। बाद में जब बीजापुर और फतहखाँ में सन्धि हुई तो सन्धि की एक शर्त यह भी थी कि शाहजी को वीरता के उपलक्ष्य में पुरस्कार मिले। फतहखाँ ने बीजापुर से संधि होते ही मुगलों पर धावा बोल दिया। परन्तु फतहखाँ को मुँह की खानी पड़ी और महावतखाँ ने उसे कैद कर लिया। अहमदनगर राज्य का मुगल साम्राज्य में विलय हो गया। अब महावतखाँ ने यह योजना बनाई कि शाहजी को भी जीत लिया जाय तो बीजापुर और अहमदनगर के दोनों राज्यों पर मुगलों का अधिकार हो जाय। उसने अवसर पाकर शाहजी की पत्नी जीजाबाई और बालक शिवाजी को पकड़ लिया। परन्तु मराठों ने उन्हें छुड़ाकर कोन्डाना दुर्ग में भिजवा दिया। इसी समय आगरे में साम्राज्ञी मुमताजमहल का देहान्त हो गया और शाहजहाँ ताजमहल निर्माण में व्यस्त होगया। इधर अवसर पाकर शाहजी ने अब दूसरा पैंतरा बदला। फतहखाँ कैद हो चुका था और उसने जो बादशाह तख्त पर बैठाया था, उसे भी गिरफ्तार करके महावतखाँ ने ग्वालियर के किले में भेज दिया था। शाहजी ने तत्काल अहमदनगर के शाही खानदान के एक अल्प-वयस्क बालक को सिंहासन पर बैठाकर उसका राज्याभिषेक कर दिया और पूना तथा चाकण से लेकर बालाघाट तक के सारे प्रदेश तथा गुन्नूर के आस-पास का सारा निजामी इलाका छीन कर अपने अधिकार में कर लिया और जुन्नर शहर को राजधानी बनाकर उसी सुलतान के नाम पर शासन करना आरम्भ कर दिया।

बीजापुर राज्य में इस समय दो बलशाली सामन्त थे—अदरुल्लाखाँ

और मुन्दुपंत। दोनों ही शाहजी के समर्थक थे। गुप्त रूप से बीजापुर का शाह भी उनका समर्थक और सहायक था। इन सब बातों को सुनकर शाहजहाँ बहुत क्रुद्ध हो उठा। उसका बहुत रुपया और समय दक्षिण में व्यय हुआ था। बीजापुर इस समय भी मुगलों से उलझा हुआ था। अतः उसे शाहजी जैसे सुलझे हुए सेनापति की सहायता अपेक्षित थी। उधर मुगल बादशाह दो पीढ़ियों से दक्षिण की सिरदर्दी उठा रहे थे। इन सब घटनाओं ने शाहजी को सब उत्तरी-दक्षिणी शक्तियों का केन्द्र बना दिया। अन्ततः शाहजहाँ ने ४० हजार सैन्य देकर शाइस्ताखाँ और अलीवर्दीखाँ को दक्षिण भेजा। उन्होंने दक्षिण की मुगल सेना से मिलकर बीजापुर और शाहजी दोनों ही को जड़-मूल से खोद फेंकने का निश्चय किया। शाहजी ने तीन बरस तक इस संयुक्त मोर्चे से लोहा लिया। बहुत-से किले और इलाके शाहजी के हाथ से निकल गए, पर शाहजी को पकड़ने के उनके सब प्रयत्न विफल हुए। वह लड़ते हुए कोंकण तक चले गए। अन्ततः बीजापुर ने शाहजहाँ से संधि कर ली और उस संधि के अनुसार शाहजी ने भी बालक शाह को मुगलों को सौंपकर बीजापुर के अली आदिलशाह की नौकरी कर ली। बीजापुर ने शाहजी का अच्छा सत्कार किया। उन्हें उनकी पूरी जागीर दे दी गई जिसमें पूना की जागीर भी सम्मिलित थी। बाद में कुहार-रूसकटी-बंगलौर-बालापुर और सूमा भी उनके अधिकार में आ गए और बरार के २२ गाँवों की देशमुखी भी उन्हें देदी गई। इस प्रकार शाहजी को बहुत-सी जागीर और इलाका मिल गया और वे एक प्रकार से राजा की भाँति रहने लगे।

४

शिवाजी

शाहजी का पहिला विवाह जीजाबाई के साथ हुआ था। जीजाबाई की पहिली संतान शम्भाजी थे, वह अपने पिता के साथ ही रहते थे।

शिवाजी, शाहजी और जीजाबाई के दूसरे पुत्र थे। इनका जन्म जुन्नर शहर के पास शिवनेर के पहाड़ी किले में सन् १६२७ में हुआ। इस समय शाहजी और उनके श्वसुर लक्खूजी जादौराय एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ रहे थे। जादोराय मुगलों से मिल गए थे, पर शाहजी अपनी पुरानी सरकार के ही साथ थे। इस पैतृक झगड़े के कारण जीजावाई और शाहजी में वैमनस्य हो गया। इसी समय जीजाबाई और उनके शिशु पुत्र को मुसलमानों ने कब्जे में कर लिया। जीजाबाई को किसी तरह कोन्डाना दुर्ग में भेज दिया गया जहाँ वह एक प्रकार से नजरबन्द रहती थीं, पर उन्होंने अपने पुत्र को छिपा दिया ताकि वह मुसलमानों के हाथ न लगे। आजकल जब कि पाँच-छः वर्ष के बच्चे खेल-कूद में मस्त रहते हैं, तब ६ वर्ष के शिवाजी मुसलमानों के भय से इधर-उधर छिपते फिर रहे थे। सन् १६३६ तक शिवाजी अपने पिता का मुख तक न देख सके। सन् १६३० ही में शाहजी ने एक दूसरे खानदान में विवाह कर लिया था।

शाहजी जब फिर बीजापुर राज्य की नौकरी में गए तो उस समय शिवाजी की आयु १० वर्ष की थी। शाहजी बीजापुर के लिए नए प्रदेश जीतने और अपने लिए नई जागीर प्राप्त करने के लिए तुङ्ग-भद्रा और मैसूर के पठार की ओर बढ़े और वहाँ से मद्रास के समुद्र तट की ओर बढ़ गए। इस चढ़ाई के बाद उन्होंने जीजाबाई और शिवाजी को मुक्त किया और आकर पहली बार पुत्र का मुंह देखा और उसका विवाह किया। शिवाजी का विवाह करके वे कर्नाटक की लड़ाई को प्रस्थान कर गए और पत्नी तथा पुत्र को अपनी जायदाद के कारभारी दादाजी कोंणदेव की देखरेख में पूना भेज दिया; और अपनी दूसरी पत्नी तुकाबाई और उसके पुत्र व्यंकोजी को अपने साथ रखा। पति की इस उपेक्षा का जीजाबाई के मन पर भारी प्रभाव पड़ा, और उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी होकर धार्मिक हो गई, जिसका प्रभाव शिवाजी पर भी पड़ा। इस समय शिवाजी के साथ खेलने के लिए न कोई बालक साथी था, न भाई-बहन

थे, न पिता का सहवास था। विवाह का वे महत्व न समझते थे। इस एकाकीपन ने शिवाजी को अपनी माता के अधिक निकट ला दिया और वे मातृप्रेम में अभिभूत हो माता को देवी के समान पूजने लगे। इस उपेक्षा और एकाकी जीवन ने शिवाजी को स्वावलम्बी, दबंग और स्वतन्त्र विचारक बना दिया। उनमें एक ऐसी अन्तःप्रेरणा उत्पन्न हो गई कि वे आगे चलकर सब काम अन्तःप्रेरणा से ही करने लगे। दूसरे के आदेश-निर्देश की उन्हें परवाह न रही। घुड़सवारी, शिकार और युद्ध में वे पूरे मनोयोग से प्रवीण हो गए। साथ ही माता ने उन्हें पुराणों की कहानियाँ और धर्मोपाख्यान सुनाकर उनकी वृत्ति को कट्टर हिन्दू बना दिया। पूना जिले का यह पश्चिमी भाग जो सह्याद्रि पर्वत शृङ्खला की तलहटी में घने जंगलों के किनारे-किनारे दूर तक चला गया था, मावल कहलाता था। यहाँ मावले किसान रहते थे, जो बड़े परिश्रमी और साहसी थे। शिवाजी ने उन्हीं मावले तरुणों को चुनकर एक छोटी-सी टोली बनाई और उनके साथ सह्याद्रि की चोटियों, घाटियों और नदी किनारे जंगलों में चक्कर काटना आरम्भ किया, जिससे उनका दैनिक जीवन कठोर और सहिष्णु हो गया। धर्म-भावना के साथ चरित्र की दृढ़ता ने उनमें स्वातन्त्र्य प्रेम की स्थापना की, और उनके मन में विदेशियों के हाथ से महाराष्ट्र का उद्धार करने की भावना पनपती गई।

५
बचपन का उठान

मुरारजी पन्त ने बीजापुर दरबार से आकर जीजाबाई को मुजरा किया और कहा—"महाराज की आज्ञा है कि शिवाजी बीजापुर दरबार में उपस्थित होकर शाह को सलाम करें। शाह की भी यही मर्जी है। अतः आप उन्हें मेरे साथ भेज दीजिए।"

परन्तु यह प्रस्ताव बालक शिवाजी ने अस्वीकार कर दिया। कहा—"मैं सलाम नहीं करूंगा।"

"क्यों नहीं करोगे, बेटे ? शाह को सलाम करना हमारा धर्म है। हम उनके नौकर हैं।" जीजाबाई ने कहा।

"मैं तो नौकर नहीं हूं, मां।"

"पुत्र, तुम्हारे पिता नौकर हैं। यह जागीर बादशाह की दी हुई है।"

"किन्तु मैं अपनी तलवार से जागीर प्राप्त करूंगा।"

"यह समय ऐसी बातें कहने का नहीं है। पुत्र, तुम शाही सेवा में चले जाओ।"

"नहीं जाऊंगा।"

"यह तुम्हारे पिता की आज्ञा है पुत्र, जाना होगा।"

"अच्छा जाता हूं, पर सलाम मैं नहीं करूंगा।"

मुरारजी पन्त उन्हें समझा-बुझा कर दरबार में ले गए। शाहजी वहां उपस्थित थे। उन्होंने बालक शिवाजी को शाह के सम्मुख उपस्थित किया। परन्तु शिवाजी शाह को साधारण सलाम करके खड़े हो गए, न मुजरा किया न कोर्निस। चुपचाप ताकते खड़े रहे।

शाही अदब भंग हो गया। यह देख शाह ने वजीर से कहा—"शिवा से पूछो कि क्या वजह है, उसने दरबारी अदब से कोर्निस नहीं की।"

शिवाजी ने कहा—"मैं जैसे पिताजी को सलाम मुजरा करता हूं वैसे ही आपको की है, पिताजी के समान समझकर।"

शाह यह जवाब सुनकर हँस पड़े। उन्होंने शाहजी की ओर देख कर कहा—"शिवा होनहार लड़का है। हम इस पर खुश हैं।"

शाहजी ने नम्रता से कहा, "बेअदबी माफ हो, बच्चा है, दरबारी अदब नहीं जानता।"

बादशाह ने भी हँसकर पूछा—"शिवा की शादी हुई या नहीं ?"

"जी हां, पूना में इसका ब्याह हुआ है।"

"लेकिन उसने मां-बदौलत को अपना बाप कहा है। बस, उसकी एक शादी हमारे हुजूर में होगी और हम खुद बाप की सब रसम अदा करेंगे। लड़की की तलाश करो।"

शाहजी ने झुककर बादशाह को सलाम किया और कहा—"हुक्म तामील होगा।" और दरबार से चले आए।

शिवाजी ने डेरे पर लौटकर स्नान किया। बीजापुर में शिवा का दूसरा विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। बादशाह आदिलशाह ने खुद सब अमीर-उमराव के साथ शरीक होकर सब नेग भुगताए। शाहजी ने भी बादशाह की खूब आवभगत की।

नया ब्याह कर शिवाजी शीघ्र ही पूना लौट आए। परन्तु दरबार में अपने पिता की शाह के सामने दासता देख उनका जी दुख से भर गया। वे खिन्न रहने लगे।

दादा कोंणदेव बड़े अच्छे मुत्सद्दी और राजनीति-विचक्षण पुरुष थे। उन्होंने शिवाजी में महापुरुषों के लक्षण देख लिए थे। वे कहा करते थे—हमारा शिवा शिव का साक्षात् अवतार है और भवानी का वरद पुत्र है। उन्होंने उन्हें राज्य प्रबन्ध, धर्मशास्त्र, युद्ध-कौशल की बहुत अच्छी शिक्षा दी। उनके ही अध्यवसाय से इलाके की आय और आबादी बढ़ गई थी। वे बीच-बीच में शिवाजी को नीति, धर्म और रियासत के काम की भी शिक्षा देते थे। इस इलाके में मावली लोगों की बस्ती थी जो दरिद्र किन्तु वीर होते थे। दादा ने उन्हें अनुशासन की शिक्षा दी थी। बहुत-सी जमीन देकर उन्हें मेहनती कृषक बनाया था। उन दिनों मरहठों में लिखने-पढ़ने का रिवाज बिलकुल न था, पर दादा ने शिवाजी की रुचि पढ़ने-लिखने में देखी। घुड़सवारी, तीर, नेजा, तलवार चलाने तथा मल्लयुद्ध में शिवाजी इसी उम्र में चाक-चौबन्द हो गए थे।

सबसे बड़ा प्रभाव उन पर रामायण और महाभारत का पड़ा था। यह शिक्षा उन्हें दादा तो देते ही थे, परन्तु उनकी माता भी देती थीं। वे बड़ी भारी रामभक्त थीं। शिवाजी बड़े प्रेम से रामायण-महाभारत की कथा-वार्ता सुनते और उस पर चर्चा करते थे।

धीरे-धीरे मावले तरुणों में शिवाजी की जान-पहचान और घनिष्ठता होती गई। अब वह कभी-कभी दिन-दिन भर घर में गायब रहते और इन्हीं मावले तरुणों के साथ वन-पर्वतों में घूमा करते, शिकार करते या शस्त्राभ्यास करते थे। उनकी यह जमात अपने को सब बन्धनों से मुक्त समझती थी। वह किसी भी राज-व्यवस्था की पाबन्द नहीं थी। वह पूर्णतया स्वतन्त्र थी। यदा कदा यह मंडली कभी बीजापुर और कभी मुगलों की अमलदारी में घुस जाती और लूटमार करके भाग आती। धीरे-धीरे प्रसिद्ध हो गया कि शाहजी का लड़का शिवा डाकू हो गया है और वह लूटपाट करता फिरता है।

दादा कोंणदेव के पास ऐसी शिकायतें आतीं, तो वे उन्हें सुनी-अनसुनी कर देते, परन्तु शिवाजी के चरित्र पर वे नजर अवश्य रखते थे। धीरे-धीरे रियासत की देखभाल का बोझ वे उन पर डालने लगे। और इसमें शिवाजी का बहुत-सा समय लगने लगा।

शाहजी की जागीर में कोई किला न था और शिवाजी के मन में यह अभिलाषा थी कि कोई किला उन्हें हथियाना चाहिए। बस उन्होंने साथियों को अपने अभिप्राय से अवगत किया और उन्होंने उसका समर्थन किया। अब वे इसी धुन में रहने लगे कि कैसे कोई किला उनके हाथ लगे।

७

माता और पुत्र

"क्यों रे शिव्वा, अभी तू १८ बरस का भी नहीं हुआ और

अभी से इतना उद्दण्ड हो गया। दादा के पास शिकायतें आई हैं। तू दिन-दिन भर रहता कहां है, बोल ?"

"माता, मैं तो तुम्हारी गोद में ही रहता हूं।"

"झूठा कहीं का। मैंने तुझे इतनी कथा भागवत सुनाई सो···?"

"सो वह व्यर्थ नहीं जायगी, माता। आप ही तो मेरी आदि गुरु हैं।"

"अरे, मैंने तो तुझसे शंभा से भी अधिक आशा की थी। तेरे पिता ने तो ग्यारह बरस तेरा मुंह भी नहीं देखा, मैंने ही तुझे आंख का तारा बना कर रखा।"

"तो माता, क्या पिताजी ने मेरे विषय में कुछ लिखा है ?"

"अरे, तूने उनकी प्रतिष्ठा में बट्टा लगा दिया। उस दिन तूने दरबार में जाकर शाह को सलाम नहीं किया। सलाम करता तो तुझे शाही रुतबा मिलता। बादशाह ने तेरी तारीफ सुनकर ही बुलाया था। बेचारे मुरारजी पन्त को कितना लज्जित होना पड़ा, यह तो देख।"

"माता, जिस दिन मैं पिता की प्रतिष्ठा को बट्टा लगाऊंगा, उसी दिन प्राण त्याग दूंगा। पर शाह को सलाम तो मैं नहीं करूंगा।"

"अरे वे हमारे मालिक हैं, यह भी तो देख।"

"वे गौ-ब्राह्मण के शत्रु हैं, और मैं उनका रक्षक, मैं तो यही जानता हूं।"

"लेकिन शिव्वा, तेरे बाबा मालोजी भोंसले और उनके भाई बिठोजी एक साधारण किलेदार थे। पर थे बड़े वीर। अब तुम्हारे पिता के बाहुबल से आज हम इतने बड़े जागीरदार हुए। पर सब शाही कृपा से। निजामशाह ने उन्हें बारह हजारी का मनसब और राजा की उपाधि दी, तथा पूना और सूमा के जिले दिए।"

"यह तो मैं जानता हूं, मां।"

"तो देख, तेरे दादा और पिता भी तो हिन्दू हैं। धर्म से डिगे तो नहीं, फिर भी समय देख कर काम करना पड़ता है। पहाड़ में सिर मारने से पहाड़ नहीं टूटता, सिर ही फूटता है।"

"परन्तु मां, धर्म भी एक वस्तु है। आप ही ने मुझे धर्म की शिक्षा दी है।"

"तो अब क्या मैं तुझे धर्म से विमुख होने को कहती हूँ ?"

"पर हमारा धर्म तो गौ-ब्राह्मण की रक्षा करना है।"

"तू बड़ा जिद्दी है शिवा, यथाशक्ति गौ-ब्राह्मण की भी रक्षा की जायगी। पर राजधर्म का भी तो पालन होना चाहिए।"

"तो हम प्रजापीड़कों की सहायता करके राजधर्म कैसे पालन करेंगे ?"

"तो तू क्या समझता है, तू आदिलशाही को ध्वंस कर देगा।"

"माता, तुम क्या समझती हो ?"

"मैं तो बेटा, यही समझती हूँ कि तू जिस मार्ग पर चल रहा है, उससे अपना पुश्तैनी वैभव जायगा।"

"माता, उत्तर और दक्षिण की शाहियों में यही अन्तर है। उत्तर की मुगलशाही विदेशी तुर्क-तातार-पठानों के बल पर पनपी, पर यहां दक्षिण में ये आदिलशाही और कुतुबशाहियां हम मराठों के बल पर ही पनप रही हैं।"

"अरे तो अकेला तू क्या कर लेगा ? जब भगवान ही की यह इच्छा है कि म्लेच्छ भारत पर राज्य करें, तो तू क्या करेगा।"

"तो माता, तुम समझती हो भगवान विट्ठल म्लेच्छों के सहायक हैं ?"

"हैं ही। ऐसा न होता तो हम हारते क्यों ? मरहठे क्या मुसलमानों से वीरता में कम हैं ?"

"कोरी वीरता से क्या होता है। हमारी वीरता में दासता का जो पुट लगा है ?"

"तो तू क्या चाहता है, वह कह।"

"माता, आशीर्वाद दो कि मरहठों की वीरता को दासता की कालिमा से मुक्त करने में तुम्हारा शिवा समर्थ हो।"

"आशीर्वाद देती हूं। पर बेटे, अपने बलाबल का भी तो ध्यान रख। व्यर्थ शाहियों को छेड़-छाड़ कर अपने सिर बला न बुला। तेरे पिता ने जैसे अपना यश और मान बढ़ाया है, वैसे ही तू भी बढ़ा। समय बलवान है यह मत भूल।"

"यह तो मुझसे न हो सकेगा मां, तुम कहो तो मैं कहीं देश से बाहर चला जाऊं।"

"चल, फिर मैं भी तेरे साथ चलूं।"

"आप क्यों चलेंगी ?"

"तो मैं क्या तुझे छोड़ दूंगी ? सुख-दुख में मैं तेरे साथ ही रहूंगी। मैं जानती हूँ, मेरी कोख में तू अवतारी जन्मा है। तुझे मैं क्या समझाऊं, मैं तो प्रेमवश कहती हूँ।"

शिवाजी माता के चरणों में लोट गए और बोले—"माता, आश्वस्त रहो। तुम्हारा शिवा प्राण रहते ऐसा कोई काम न करेगा जो तुम्हारी कोख को लजाए।"

माता पुत्र को छाती से लगाकर प्रेम के आंसू बहाती रही।

८

शिवाजी का उदय

सन् १६४६ में दादाजी कोंणदेव की मृत्यु होजाने पर शिवाजी ने अपनी स्वतन्त्रता की हुंकार भरी और पहला वार तोरण के किले पर किया। यह किला पूना के पश्चिम में २० मील पर था। वहाँ के किलेदार से उन्होंने किला छीन लिया। किले में बीजापुर राज्य के खजाने के दो लाख हूण शिवाजी के हाथ लगे। उन्होंने वकील भेजकर बीजापुर दरबार

में प्रकट किया कि उन्होंने यह काम राज्य के हित की दृष्टि से किया है। दूत ने शिवाजी की बहुत प्रशंसा की, और निवेदन किया कि शिवाजी पहले जागीरदारों की अपेक्षा दुगना लगान देंगे।

इसके बाद उन्होंने तोरण से कोई पाँच मील दूर पूर्व में पहाड़ी की एक चोटी पर राजगढ़ नाम का एक नया किला बनवाया और उसे अपना केन्द्रस्थान निश्चित किया। कुछ दिन बाद उन्होंने बीजापुर का कोण्डाना किला भी कब्जे में कर लिया और शाहजी की पश्चिमी जागीर के उन सभी भागों को अपने अधिकार में कर लिया जिनकी देखभाल दादाजी कोंणदेव करते थे।

जब शिवाजी की इन हरकतों की सूचनाएँ लगातार बीजापुर पहुँचीं तो वहाँ से शिवाजी के नाम इस प्रकार के परवाने जारी किए गए कि वह अपनी हरकतों से बाज आए। परन्तु शिवाजी ने उनकी कोई परवाह नहीं की, न कोई जवाब दिया। तब शाह ने कर्नाटक में शाहजी को लिखा कि वह अपने लड़के को समझाए। परन्तु उन्होंने साफ जवाब दे दिया कि शिवाजी ने मेरी सम्मति के बिना ही यह काम किया है। पर मैं और मेरे सब सम्बन्धी भी दरबार के शुभचिन्तक हैं। और शिवाजी भी जो कुछ कर रहा है, वह जागीर की उन्नति के लिए ही है। शाहजी ने शिवाजी को भी खत लिखा कि ऐसी कार्यवाहियों से बाज आए। पर शिवाजी के हृदय में जो आग दहक रही थी, उसे वे क्या जानते थे। उन्होंने मालगुजारी का हिसाब भी मांगा, क्योंकि अब सब रियासत की देखभाल शिवाजी ही करते थे, परन्तु शिवाजी ने लिख दिया कि इलाका निर्धन है और उसकी आय खर्च के लिए ही काफी नहीं है। बचत की कोई गुंजाइश नहीं है। इस समय जागीर में दो आदमी शिवाजी के विरोधी थे, एक तो था चाकण का किलेदार—दूसरा शिवाजी का सौतेला मामा था जो सोमा जिले का जिलेदार था। चाकण के किलेदार को तो आसानी से शिवाजी ने आधीन कर लिया, पर दूसरे को

कैद करना पड़ा। अब शिवाजी ने सिंहगढ़, कर्णाटक और पुरन्दर के किले भी अपने आधीन कर लिए। बीजापुर का शाह इस समय रोगशैय्या पर पड़ा-पड़ा महल और मकबरे बनवा रहा था, और सेनापति शाहजी कर्णाटक की लड़ाइयों में दौड़धूप कर रहे थे।

निरन्तर शिवाजी की इन विजयों से विचलित होकर आदिलशाह क्रुद्ध हो गया और उसने एक बड़ी सेना शिवाजी के विरुद्ध भेजने का इरादा किया। पर दरबार में शाहजी के मित्र भी थे, उन्होंने उसे समझाया कि शिवाजी की यह हलचल रियासत के लिए लाभदायक है। इससे राज्य की दक्षिणी सीमाएं सुरक्षित और दृढ़ होती हैं।

शिवाजी की हरकतें जारी रहीं। उन्होंने कोलावा पर आक्रमण करके वहां के सरदारों को मिला लिया। परन्तु जब उन्होंने आगे बढ़कर कल्याण दुर्ग भी अधिकृत कर लिया, तब तो आदिलशाह एकदम आपे से बाहर हो गया। उसने शिवाजी को दण्ड देने को एक बड़ी सेना भेजी।

८

गुरु और शिष्य

पूना से पश्चिम की ओर, सह्याद्रि शृङ्ग के एक दुरूह शिखर पर एक अति प्राचीन, शायद बौद्धकालीन, गुफा है। उसके निकट घने वृक्षों का झुरमुट है। अमृत के समान मीठे पानी का एक झरना भी है। इसी गुफा के सम्मुख, कोई एक तीर के अंतर पर, एक विस्तृत मैदान है। उसे खास तौर पर साफ और समतल बनाया गया है।

वहां एक बलिष्ठ युवक बर्छा फेंकने का अभ्यास कर रहा था। युवक गौर-वर्ण, सुन्दर, ठिगना और लोहे के समान ठोस था। उसने अपने सुगठित हाथों में बर्छा उठाया, और तौल कर एक वृक्ष को लक्ष्य करके फेंका। बर्छा वृक्ष को चीरता हुआ पार निकल गया। गंभीर स्वर में किसी ने कहा—"ठीक नहीं हुआ, तुम्हारा लक्ष्य चलित हो गया।"

युवक ने माथे का पसीना पोंछकर पीछे फिरकर देखा। एक जटिल संन्यासी तीव्र दृष्टि से युवक को ताक रहे थे। युवक ने सिर झुका लिया। सन्यासी अग्रसर हुए। उन्होंने बर्छे को क्षण भर तौला और विद्युत्-वेग से फेंक दिया। बर्छा स्थूल वृक्ष को चीरता हुआ क्षण भर ही में धरती में घुस गया। उत्साहित होकर युवक ने एक ही झटके में बर्छा उखाड़ा, और महावेग से फेंका। इस बार बर्छा वृक्ष को चीरकर धरती में घुस गया। सन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा—"हां, यह कुछ हुआ। वत्स, मैं तो वृद्ध हुआ, युवक-सा पौरुष कहां? हां, तुम अभी और भी स्फूर्ति उत्पन्न करो।"

युवक ने गुरु के चरणों में प्रणाम किया, और दोनों ने तलवारें निकाल लीं। प्रथम मंद, फिर वेग और उसके बाद प्रचंड गति से दोनों गुरु-शिष्य तलवारें चलाने लगे, मानो विजलियां टकरा रही हों। दोनों महाप्राण पुरुष पसीने से लथपथ हो गए। श्वास चढ़ गया, परन्तु उनका युद्ध-वेग कम न हुआ। दोनों ही चीते की भांति उछल-उछल कर वार कर रहे थे। तलवारें झनझना रहीं थीं। गुरु ने ललकार कर कहा—"बेटे, लो, एक सच्चा वार तो करो। देखें शत्रु को तुम किस भांति हनन करोगे।"

युवक ने आवेश में आकर सन्यासी के मोढ़े पर एक भरपूर वार किया। सन्यासी ने कतराकर एक जनेवा का हाथ जो दिया तो युवक की तलवार झन्नाकर दस हाथ दूर जा पड़ी। सन्यासी ने युवक के कंठ पर तलवार रख कर कहा—"वत्स बस, यही तुम्हारा कौशल है? इस समय शत्रु क्या तुम्हें जीवित छोड़ता?"

युवक ने लज्जा से लाल होकर गुरु के चरण छूए, और फिर तलवार उठा ली। इस बार उसने अंधाधुन्ध वार किए, पर सन्यासी मानो विदेह पुरुष थे। उनका शरीर मानो दैवकवच से रक्षित था। वह वार बचाते, युवक को सावधान करते और तत्काल उसके शरीर पर

तलवार छुवा देते थे। अंत में युवक का दम बिलकुल फूल गया। उसने तलवार गुरु के चरणों में रख दी, और स्वयं भी लोट गया। गुरु ने उसे छाती से लगाया और कहा—"वत्स, आज ही श्रावणी पूर्णिमा है, महाराज अभी आते होंगे। आज तुम्हें इस सन्यासी को त्यागना होगा और जिस पवित्र व्रत को तुमने लिया है, उसमें अग्रसर होना होगा। यद्यपि मैं जैसा चाहता था, वैसा तो नहीं, पर फिर भी तुम पृथ्वी पर अजेय योद्धा हो, तुम्हारी तलवार और बर्छे के सम्मुख कोई वीर स्थिर नहीं रह सकता।"

युवक फिर गुरु-चरणों में लोट गया। उसने कहा—"प्रभो, अभी मुझे और कुछ सेवा करने दीजिए।"

"नहीं, वत्स! अभी तुम्हें बहुत कार्य करना है, उसकी साधना ही मेरी चरण-सेवा है।"

हठात् वज्र-ध्वनि हुई—"छत्रपति महाराज शिवाजी की जय।"

दोनों ने देखा, महाराज घोड़े से उतर रहे हैं। उन्होंने धीरे-धीरे आकर सन्यासी की चरण-रज ली और सन्यासी ने उन्हें उठा कर आशीर्वाद दिया। युवक ने आकर महाराज के सम्मुख घुटनों के बल बैठकर प्रणाम किया। महाराज ने कहा—"युवक, आज वही श्रावणी पूर्णिमा है।"

"जी।"

"आज उस घटना को तीन वर्ष हो गए, जब तुम्हें घायल करके शत्रु तुम्हारी बहन को हरण कर ले गए थे, तुम्हें स्मरण है?"

"हां महाराज, और आपने मुझे जीवन-दान दिया था, मैंने यह प्राण और शरीर आपको भेंट किए थे।"

"और तुमने प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की थी?"

"जी हां।"

"मैंने तुम्हें गुरुजी की सेवा में तीन वर्ष के लिए इसलिए रखा था कि तुम शरीर, आत्मा और भावना से गंभीर एवं दृढ़ बनो, तामसिक क्रोध का नाश करो, सात्विक तेज की ज्वाला से प्रज्वलित होओ।"

"हां महाराज, गुरु-कृपा से मैंने आत्मशुद्धि की है।"

"और अब तुम वैयक्तिक स्वार्थ के दास तो नहीं ?"

"नहीं प्रभो।"

"प्रतिशोध लोगे ?"

"अवश्य।"

"अपनी बहन का ?"

"नहीं, एक हिन्दू अबला की स्वतन्त्रता-हरण का, मर्यादारहित पाप का।"

"और तुम में वह शक्ति है ?"

"गुरु-चरणों की कृपा और महाराज की छत्रछाया में उसे मैं प्राप्त करूंगा।"

"तुम्हारी तलवार में धार है ?"

"है।"

"और तुम्हारी कलाई में उसे धारण करने की शक्ति ?"

"है।"

"समय की प्रतीक्षा का धैर्य ?"

"प्रतीक्षा का धैर्य ?" युवक ने अधीर होकर कहा।

"हाँ धैर्य ?" महाराज ने कठोर स्वर में कहा।

युवक का मस्तक झुक गया, और उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। उसने कहा—"महाराज, धैर्य तो नहीं है।" वह महाराज के चरणों में गिर गया। महाराज ने उठाकर उसे छाती से लगाया। वे सन्यासी की ओर देखकर हँस दिए। उन्होंने कहा, "गुरु की क्या आज्ञा है ?"

"ताना तैयार है, मैंने उसे गुरु-दीक्षा दे दी है।" फिर कहा—"वत्स!"

युवक ने गुरु की ओर आँखें उठाईं। वे अब भी आँसुओं से तर थीं।

"शान्त हो, देखो, सदैव कर्तव्य समझ कर कार्य करना। फल की चिन्ता न करना।" युवक चुप रहा।

"यदि फल की आकांक्षा करोगे, तो धैर्य से च्युत हो जाओगे और कदाचित् कर्तव्य से भी।"

"प्रभो, मैं अपनी भूल समझ गया।"

"जाओ पुत्र, महाराज की सेवा में रहो, विजयी बनो। भारत के दुर्भाग्य को नष्ट करो। नवीन जीवन, नवीन युग का प्रवर्तन करो। धर्म, नीति, मर्यादा और सामाजिक स्वातन्त्र्य के लिए प्राण और शरीर एवं पदार्थों का विसर्जन करो।"

युवक ने गुरु-चरणों में मस्तक नवाया। संन्यासी के नेत्रों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा—"वत्स, जाओ, जाओ। सन्यासी को अधिक आप्यायित न करो। वीतराग सन्यासी किसी के नहीं।"

इसके वाद उन्होंने महाराज से एक संकेत किया। महाराज सन्यासी को अभिवादन कर घोड़े पर चढ़े। एक घोड़े पर युवक चढ़ा, और धीरे-धीरे वे उस पर्वत-शृङ्ग से उतर चले।

सन्यासी शिला-खण्ड की भाँति अचल रहकर उन्हें देखते रहे, जब तक कि वे आँख से ओझल नहीं हो गए।

१०

तानाजी मलूसरे

पिछले परिच्छेद में जिस युवक की चर्चा है, वही तानाजी मलूसरे थे। यह वही युवक था जिससे मुमूर्षावस्था में शिवाजी का प्रथम परिच्छेद

में प्रथम-मिलन हुआ था। शिवाजी ने इस युवक को धीर, वीर और काम का आदमी समझकर उसे शस्त्रास्त्र की सर्वोच्च शिक्षा देने प्रसिद्ध हरिनाथ स्वामी का अन्तर्वासी वनाया था, जो सह्याद्रि शैल पर एकान्त-वास कर रहे थे। हरिनाथ स्वामी शस्त्र विद्या के प्रकाण्ड आचार्य थे और शिवाजी ने उनसे वाल्यकाल में प्रेरणा पाई थी।

तानाजी मलूसरे कोंकण प्रान्त के निवासी थे जहाँ शिवाजी ने प्रारम्भिक विजय प्राप्त की थी। इस समय तीन तरुण सरदार शिवाजी के उत्थान में सहायक थे—एक तानाजी मलूसरे, दूसरे पेशाजी कंक और तीसरे वाजीप्रभु पारूलकर। ये तीनों तरुण शिवाजी के समवयस्क तो थे ही, महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता की आग भी इनके हृदय में शिवाजी से कम नहीं थी। इसके अतिरिक्त वे बड़े बाँके वीर, कर्मठ राजपुरुष और दुर्दम्य साहसी पुरुष थे। इन्हीं तीन सहायक मित्रों को लेकर शिवाजी ने अपनी विजय-यात्रा आरम्भ की थी, शिवाजी की माता जीजाबाई भी इन्हें शिवाजी के समान ही पुत्रवत् प्यार करती थीं। वे निरन्तर उन्हें शौर्य प्रदर्शन के लिए उकसाती रहती थीं और शिवाजी ने इन्हीं लोगों के वल-बूते पर दक्षिण के इस्लामी राज्य और मुगल राज्य को उखाड़ फेंकने का बीड़ा उठाया था। प्रारम्भिक युद्धों में तानाजी मलूसरे का प्रमुख हाथ रहा, और धीरे-धीरे मराठा सेना में उनका नाम प्रेम और आदर से लिया जाने लगा।

तानाजी मलूसरे के प्राणों की रक्षा शिवाजी ने की थी, इसलिए तानाजी ने अपने प्राण उन पर न्यौछावर कर देने की शपथ ली थी। इसके अतिरिक्त उनकी प्रिय वहन का अपहरण भी ऐसी घटना थी कि जिसके कारण उनका मन प्रतिहिंसा की ज्वाला में धधक रहा था। परन्तु हरिनाथ स्वामी ने उनके मन का वह कलुप धो डाला था और उन्हें शिक्षा दी थी कि यह केवल तुम्हारा व्यक्तिगत मामला ही नहीं है, तुम्हारी हजारों वहनों का इसी प्रकार अपहरण हुआ है। इसलिए इसे कोरा व्यक्तिगत

प्रश्न न समझें और हिन्दू-धर्म, अबलाओं की रक्षा, गौरक्षा और स्वाधीनता के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करें।

तानाजी जैसे सुभट योद्धा और प्रचण्ड सेनापति थे, वैसे ही वे कष्ट-सहिष्णु और विचारशील भी थे। स्वभाव उनका सरल था और प्रकृति हंसमुख थी, परन्तु मुद्दे की बात पर वे चट्टान की तरह अटल रहते थे।

११
फिरङ्गी से मुलाकात

"महाराज की जय हो, मेरी एक विनती है।"

"क्या कहते हो ?"

"बीजापुर की सेना परसों अवश्य ही तोरण दुर्ग पर आक्रमण करेगी।"

"सो तो सुन चुका हूँ।"

"दुर्ग की पूरी मरम्मत नहीं हो पाई है, ऐसी दशा में वह आक्रमण न सह सकेगा।"

"मालूम तो ऐसा ही होता है।"

"परन्तु कल संध्या तक दुर्ग बिलकुल सुरक्षित हो जायगा।"

"यह तो अच्छी बात है।"

"परन्तु महाराज, अपराध क्षमा हो।"

"कहो।"

"एक निवेदन है।"

"क्या ?"

"केवल एक-एक मुट्ठी चना मेरे सैनिकों और मजदूरों को मिल जाय, तो फिर वे कल संध्या तक और कुछ नहीं चाहते।"

"यह तो तुम जानते ही हो, वह मैं न दे सकूँगा।"

तानाजी चुप रहे। महाराज भी चुप हो गए। वह चंचल गति से इधर-उधर घूमने लगे।

एक प्रहरी ने सम्मुख आकर कहा—"महाराज, एक फिरंगी दुर्ग-द्वार पर उपस्थित है, दर्शनों की इच्छा करता है।"

महाराज ने चकित होकर कहा—"फिरंगी? वह कहाँ से आया है?"

"सूरत से आ रहा है।"

"साथ में कौन है?"

"दो सवार हैं।"

"वह चाहता क्या है?"

"महाराज से मुलाकात करना।"

क्षण भर महाराज ने कुछ सोचा, इसके बाद तानाजी को आज्ञा दी—"उसे महल के बाहरी कक्ष में ले आओ।"

तानाजी ने "जो आज्ञा" कहकर प्रस्थान किया, और महाराज भी कुछ सोचते हुए महल की ओर चले गए।

२२

गहरा सौदा

"तुम्हारा देश कौनसा है?"

" फ्रांस देश का अधिवासी हूं।"

"क्या चाहते हो?"

"महाराज, मैं कुछ हथियार बीजापुर के बादशाह के हाथ बेचने लाया था, परन्तु यहां आने पर आपकी यशोगाथा का विस्तार प्रजा में सुनकर इच्छा होती है, वे हथियार मैं आपको देदूं, यदि महाराज प्रसन्न हों। मेरे पास ५० तो छोटी विलायती तोपें हैं, ५ हजार बन्दूकें और

श्रौर इतनी ही तलवारें हैं। सभी हथियार फ्रांस देश के बने हुए हैं। श्रौर भी युद्ध-सामग्री है।"

महाराज ने मंद हास्य से पूछा—"उनका मूल्य क्या है ?"

"महाराज को मैं यह सब १० लाख रुपये में दे दूंगा। यद्यपि माल वहुत अधिक मूल्य का है।"

महाराज की दृष्टि विचलित हुई। परन्तु उन्होंने दृढ़, गंभीर स्वर से कहा—"मैं कल इसी समय इसका उत्तर दूंगा। अभी तुम विश्राम करो।"

फिरंगी चला गया। महाराज अत्यन्त चंचल गति से टहलने लगे। रात्रि का अंधकार आया। तानाजी मसालें लिए किले की मरम्मत में संलग्न थे। महाराज ने उन्हें बुलाकर कहा—"तानाजी, अब समय आ गया। अभी सारी सेना को तैयार होने का आदेश दे दो।"

"जो आज्ञा महाराज, कूच कहां करना होगा ?"

"इस फिरंगी का जहाज लूटना होगा।"

तानाजी आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। क्षण भर बाद वोले—"महाराज की जय हो! यह क्या आज्ञा आप दे रहे हैं ?"

महाराज ने लपककर, तानाजी की कलाई कसकर पकड़ली। उन्होंने कहा—"युवक सेनापति! देखते हो, दुर्ग छिन्न-भिन्न और अरक्षित है। सेना के पास न शस्त्र, न घोड़े, और खजाने में इनको देने के लिए एक मुट्ठी चना भी नहीं। उधर विजयिनी यवन सेना बीजापुर से धावा मारकर आ रही है। क्या मैं समय और उपाय रहते पिस मरूं ? ये हथियार भवानी ने मुझे दिए हैं। छोड़ूंगा कैसे ? उस फिरंगी को कैद कर लो। उसे रुपया देकर मुक्त कर दिया जायगा। जाओ, सेना को अभी तैयार होने का आदेश दो। ठीक दो पहर रात्रि व्यतीत होते ही कूच होगा।"

तानाजी कुछ कह न सके। वह सेना को आदेश देने चल दिए।

१२

भवानी का प्रसाद

महाराज बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। पीछे दो शरीर-रक्षक चुपचाप खड़े थे। तानाजी ने सम्मुख आकर कहा—"महाराज की जय हो, कूच का समय हो गया है, सेना तैयार है।"

महाराज चौंककर उठ बैठे। वह चमत्कृत थे। उन्होंने कहा—"तानाजी ?"

"महाराज"।

"मुझे भवानी ने स्वप्न में आदेश दिया है।"

"कैसा आदेश है, महाराज ?"

"यह सम्मुख मन्दिर की पीठ दिखाई पड़ती है न ?"

"हां महाराज !"

"अभी मैं बैठे-बैठे सो गया। इसमें वह जो मोखा है, उसमें से रत्नजटित गहनों से लदा हुआ एक हाथ निकल कर इसी स्थान की ओर संकेत करता है, मैंने स्पष्ट सुना, किसी ने कहा, यहीं खोदो।"

"महाराज की क्या आज्ञा है ?"

"भवानी का आदेश अवश्य पूरा होना चाहिए। उस स्थान को खुदवाओ।"

तत्काल चार बेलदारों ने खोदना प्रारम्भ किया। देखते-देखते बड़ा भारी गहरा गड्ढा हो गया। मिट्टी का ढेर लग गया। तानाजी ने ऊब कर कहा—"महाराज, अब केवल एक पहर रात्रि रही है।"

"ठहरो, क्या नीचे मिट्टी-ही-मिट्टी है ?"

भीतर से एक बेलदार ने चिल्लाकर कहा—"महाराज ! पत्थर पर कुदाल लगा है।"

महाराज ने व्यग्र स्वर में कहा—"सावधानी से खोदो।"

"महाराज की जय हो! नीचे पटिया है। उसमें एक लोहे का भारी कुण्डा है।"

"उसे बलपूर्वक उखाड़ लो।"

"महाराज, नीचे सीढ़ियां प्रतीत होती हैं। प्रकाश आना चाहिए।"

प्रकाश आया। तानाजी नंगी तलवार लेकर गड्ढे में कूद गए। दो और भी वीर कूद गए। महाराज विकलता से खड़े गंभीर प्रतीक्षा करते रहे।

तानाजी ने बाहर आकर वस्त्रों की धूल झाड़ते हुए अपनी तलवार ऊंची की और फिर तीन बार खूब जोर से कहा—"छत्रपति महाराज शिवाजी की जय।" निकट खड़ी सेना प्रलय-गर्जन की भांति चिल्ला उठी—"छत्रपति महाराज की जय।"

इसके बाद तानाजी महाराज के निकट खड़े हो गए।

महाराज ने पूछा—"भीतर क्या है?"

"भवानी का प्रसाद है।"

"कितना है?"

"चालीस देगें मुहरों की भरी रखी हैं। चांदी के सिक्के भी इतने ही हैं। एक चांदी की संदूकची में बहुत से रत्न हैं।"

महाराज एक बार प्रकम्पित वाणी से चिल्ला उठे—"जय भवानी माता की!" एक बार फिर वज्र-गर्जन हुआ। इसके बाद महाराज ने तानाजी को आदेश दिया—"सेना को विश्राम की आज्ञा दी जाय और सब खजाना सुरक्षित रूप से निकालकर तोशाखाने में दाखिल कर दिया जाय।"

१४

पहली बोहनी

नगर के गण्य-मान्य जौहरी बैठे थे। वही चाँदी की संदूकची सम्मुख रखी थी। महाराज ने कहा—"इसका क्या मूल्य है?"

"महाराज, इसका मूल्य कूतना असंभव है। यह मोतियों की माला ही अकेली दस लाख से कम मूल्य की नहीं।"

महाराज ने उन्हें विदा करके उस फ्रेंच को बुलाकर कहा—"क्या तुम इन रत्नों का कुछ मूल्य अंकित कर सकते हो?"

फिरंगी रत्नों की राशि देखकर दंग रह गया। उसने बड़े ध्यान से मोतियों की माला को देखकर कहा—"यदि महाराज की आज्ञा हो, तो मैं इस अकेली माला के बदले में अपने सम्पूर्ण हथियार दे सकता हूँ।"

महाराज मुस्कराए। उन्होंने कहा—"उसे तुम रख लो, मेरे निकट वह कंकड़-पत्थर के समान है। वे सभी हथियार और सामग्री मुझे आज संध्या से पूर्व ही मिल जानी चाहिए।"

"जो आज्ञा महाराज!" फिरंगी चला गया।

× × ×

चोबदार ने प्रवेश करके कहा—"महाराज की जय हो! एक चर सेवा में उपस्थित हुआ चाहता है?"

"उसे अभी भेज दो।"

चर ने महाराज के चरणों में सिर झुकाया।

"तुम हो महाभद्र।"

"महाराज की जय हो, सेवक इसी क्षण सुसमाचार निवेदन किया चाहता है।"

"क्या समाचार है?"

"कल्याण के हाकिम मुल्ला अहमद का भेजा हुआ एक भारी खजाना इसी मार्ग से बरार जा रहा है।"

"कितना खजाना है ?"

"पैंतीस खच्चर मुहरें हैं।"

"सेना कितनी है ?"

"पाँच हजार।"

"बीजापुरी सेना इस समय कहाँ है ?"

"वह लोहगढ़ में महाराज पर आक्रमण करने के लिए सन्नद्ध खड़ी है।"

"जाओ तानाजी मलूसरे को भेज दो, और स्वयं यह पता लगाओ कि खज़ाना आज दो पहर रात तक कहाँ पहुँचेगा ?"

"जो आज्ञा" कह कर चर ने प्रस्थान किया।

क्षण भर बाद तानाजी ने प्रवेश कर कहा—"महाराज की क्या आज्ञा है ?"

"क्या वे सब हथियार मिल गए ?"

"जी महाराज !"

"तोपें कैसी हैं ?"

"अत्युत्तम, वे सभी बुर्जियों पर चढ़ा दी गईं।"

"बन्दूकें ?"

"सब नई और उत्तम हैं। सब बन्दूकें, बर्छे और तलवार भी बाँट दी गई हैं।"

"तुम्हारे पास कुल कितने घुड़सवार हैं ?"

"सिर्फ पाँच सौ।"

"शेष।"

"शेष सब अशिक्षित किसानों की भीड़ है। उन्हें शस्त्र अवश्य मिल गए हैं, परन्तु उन्हें चलाना कदाचित् वे नहीं जानते।"

"बहुत ठीक, बीजापुर शाह का खजाना कल्याण से बरार जा रहा है। वह अवश्य वहाँ न पहुँचकर यहाँ आना चाहिए। परन्तु उसके साथ पाँच हजार चुने हुए सवार हैं। तुम अभी पाँच सौ सैनिक लेकर उन पर धावा बोल दो।"

"जो आज्ञा।"

"परन्तु युद्ध न करना, जैसे बने, उन्हें आगे बढ़ने में बाधा देना।"

"जो आज्ञा।'

"मैं प्रभात होते-होते समस्त पैदल सेना सहित तुमसे मिल जाऊँगा।"

"जो आज्ञा।"

तानाजी ने तत्काल कूच कर दिया।

१४
नया पैंतरा

दुपहरी की तीव्र सूर्य-किरणों में धूल उड़ती देख यवन-सैनिक सजग हो गए। उनके सरदार ने ललकार कर व्यूह-रचना की, और खच्चरों को खास इन्तजाम में रखकर मोर्चेबन्दी पर डट गए। कूच रोक दिया गया।

तानाजी धुआँधार बढ़े चले आ रहे थे। दोपहर होते-होते उन्होंने खजाना धर दबाया था। उन्होंने देखा, यवन-दल कूच रोककर, मोर्चा बाँधकर युद्ध-सन्नद्ध हो गया है। तानाजी ने भी आक्रमण रोककर वहीं मोर्चा डाल दिया। यवन-दल ने देखा—शत्रु जो धावा बोलता हुआ पीछा कर रहा था, आक्रमण न करके वहीं मोर्चा बाँधकर रुक गया है। इसके क्या माने ? यवन-सेनापति ने स्वयं आक्रमण कर दिया।

यवन-सेना को लौटकर धावा करते देख तानाजी ने शीघ्रता से

पीछे हटना प्रारम्भ कर दिया। दो-तीन मील तक पीछा करने पर भी जब शत्रु भागता ही चला गया, तब यवन-सेनापति ने आक्रमण रोककर सेना की शृंखला बना फिर कूच बोल दिया।

परन्तु यह देखते ही तानाजी फिर लौटकर यवन-सेना का पीछा करने लगे। यवन-सेनापति ने यह देखा। उसने सोचा, डाकू घात लगाने की चिन्ता में हैं। उसने क्रुद्ध होकर फिर एक बार लौटकर धावा किया, पर तानाजी फिर लौटकर भाग चले।

संध्या-काल हो गया। यवन-सेनापति ने खीजकर कहा—"ये पहाड़ी चूहे न लड़ते हैं, और न भागते हैं, अवश्य अन्य सेना की प्रतीक्षा में हैं। साथ ही कम भी हैं।" अतः उसने व्यवस्था की कि तीन हजार सेना के साथ खजाना आगे बढ़े, और दो हजार सेना इन डाकुओं को यहाँ रोके रहे। इस व्यवस्था से आधी सेना के साथ खजाना आगे बढ़ गया। शेष दो हजार सैनिकों ने वेग से तानाजी पर आक्रमण किया। तानाजी बड़ी फुर्ती से पीछे हटने लगे। धीरे-धीरे अन्धकार हो गया। यवन-दल लौट गया। परन्तु चतुर तानाजी समझ गए कि खजाना आगे बढ़ गया है। वह उपाय सोचने लगे। एक सिपाही ने घोड़े से उतर कर तानाजी की रकाब पकड़ी। तानाजी ने पूछा—"क्या कहते हो ?"

"आप जो सोच रहे हैं, उसका उपाय मैं जानता हूँ।"

"क्या उपाय है ?"

"यहाँ से बीस कोस पर एक गाँव है ?"

"फिर ?"

"वहाँ मेरे बहुत सम्बन्धी हैं।"

"अच्छा।"

"उस गाँव के पास एक घाटी है, जिसके दोनों ओर दुरूह, ऊँचे पर्वत हैं, और बीच में सिर्फ दो सवारों के गुजरने योग्य जगह है। यह घाटी लगभग पौन मील लम्बी है।"

तानाजी ने विचलित होकर कहा—"तुम चाहते क्या हो ?"

"यवन-सेना वहाँ प्रातःकाल पहुँचेगी।"

"अच्छा फिर ?"

"मैं एक मार्ग जानता हूँ, जिससे मैं पहर रात्रि गए वहाँ पहुँच सकता हूँ। श्रीमान्, मुझे केवल पचास सवार दीजिए। मैं गाँव वालों को मिला लूँगा, और घाटी का द्वार रोक लूंगा। यवन-दल रक्षा की धारणा से तुरन्त घाटी में प्रवेश करेगा। पीछे से आप घाटी के मुख को रोक लीजिए। शत्रु चूहेदानी में मूसे के समान फँस जायगा।"

तानाजी गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे। अन्त में उन्होंने कहा—"मैं तुम्हारी तजवीज पसन्द करता हूँ। पचास सैनिक चुन लो।"

सिपाही ने पचास सैनिक चुनकर चुपचाप खेत की पगडंडी का रास्ता लिया। तानाजी ने यवन-दल पर फिर आक्रमण करने की तैयारी की।

१५
किश्त-मात

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे को चीरकर तुरही का शब्द हुआ। सोए हुए ग्रामवासी हड़बड़ाकर उठ बैठे। देखा, ग्राम के बाहर थोड़े-से घुड़सवार खड़े हैं।

गाँव के पटेल ने भयभीत होकर पूछा—"तुम लोग कौन हो, और क्या चाहते हो ?"

सैनिकों ने चिल्लाकर कहा—"हिन्दू-धर्म-रक्षक छत्रपति महाराज शिवाजी की जय।"

गाँव के निवासी भी चिल्ला उठे—"जय, महाराज शिवाजी की जय।"

एक सवार तीर की भाँति घोड़ा दौड़ाकर ग्रामवासियों के निकट आया। उसने कहा—"सावधान रहो, छत्रपति महाराज शिवाजी ने हिन्दू-धर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया है, वे साक्षात् शिव के अवतार हैं। आज सूर्योदय होते ही तुम्हें उनके दर्शन होंगे।"

यह सुनते ही ग्रामवासी चिल्ला उठे—"महाराज शिवाजी की जय।"

"पर सुनो, आज इस गाँव की परीक्षा है। भाइयो, यवन-सेना इधर को आ रही है। आज इसी गाँव में उसका अन्त होगा, और वीरता का सेहरा इस गाँव के नाम बँधेगा।"

ग्रामवासियों ने उत्साह से कहा—"हम तैयार हैं, हम प्राण देंगे।"

"भाइयो, हमारी विजय होगी। प्राण देने की आवश्यकता नहीं। अभी दो पहर का समय हमें है। आओ, घाटी का उस पार का द्वार वृक्षों और पत्थरों से बन्द करदें और सब लोग पर्वतों पर चढ़कर छिप बैठें। बड़े-बड़े पत्थर इकट्ठे रखें, ज्यों ही यवन-दल घाटी में घुसे, देखते रहो। जब सब सेना घाटी में पहुँच जाय, ऊपर से पत्थरों की भारी मार करो। पीछे से मार्ग को महाराज शिवाजी स्वयं रोकेंगे।" समस्त गाँव "जय शिवाजी महाराज" कहकर कार्य में जुट गया।

× × ×

प्रातःकाल होने से पूर्व ही यवन-दल तेजी से घाटी में घुसा। तानाजी पीछे धावा मारते आ रहे हैं यह वे जानते थे। घाटी पार करने पर वे सुरक्षित रहेंगे, इसका उन्हें विश्वास था। परन्तु एकबारगी ही आगे बढ़ती हुई सेना की गति रुक गई। बड़ी गड़बड़ी फैली। कहाँ क्या हुआ, यह किसी ने नहीं जाना। परन्तु घाटी का द्वार भारी-भारी पत्थरों और बड़े-बड़े वृक्षों को काटकर बन्द कर दिया गया था। उसके बाहर खड़े ग्रामवासी और सवार दरारों के द्वारा तीर छोड़ रहे थे।

सारी यवन-सेना में गड़बड़ी फैल गई। यवन-सेनापति ने पीछे लौटने की आज्ञा दी, परन्तु अरे! यहाँ तानाजी की सेना मुस्तैदी से खड़ी तीर फेंक रही थी। अब एक और भारी विपत्ति आई। ऊपर से अगणित बाणों की वर्षा होने लगी, और भारी-भारी पत्थर लुढ़कने लगे। घोड़े, खच्चर, सिपाही सभी चकनाचूर होने लगे। भयानक चीत्कार मच गया। मुहाने पर दो-चार सिपाही आकर युद्ध करके कट गिरते थे। लाशों का ढेर हो रहा था।

यवन-सेनापति ने देखा, प्राण बचने का कोई मार्ग नहीं। सहस्रों सिपाही मर चुके थे। जो थे, वे क्षण-क्षण पर मर रहे थे। उसने तानाजी से कहला भेजा, "खजाना ले लीजिए, और हमारी जान बख्श दीजिए।"

तानाजी ने हँसकर कहा—"जान बख्श दी जायगी, पर खजाना, हथियार और घोड़े तीनों चीजें देनी होंगी।"

विवश यही किया गया।

एक-एक मुगल सिपाही आता, घोड़ा और हथियार रखकर एक ओर चल देता। ग्रामवासियों ने मार बन्द कर दी थी। बहुत कम यवन-सैनिक प्राण बचा सके। घोड़े, शस्त्र और खजाना तानाजी ने कब्जे में कर लिया। सूर्य की लाल-लाल किरणें पूर्व में उदय हुईं। तानाजी ने देखा, दूर से गर्द का पर्वत उड़ा आता है। उन्होंने सभी ग्रामवासियों को एकत्र करके कहा—"सावधान रहो, महाराज आ रहे हैं।"

× × ×

महाराज ने घोड़े से उतरकर तानाजी को गले से लगा लिया। ग्रामवासियों ने महाराज की पूजा की, और लूटा हुआ सभी माल लेकर शिवाजी अपने किले में लौटे। इस प्रकार संयोग, प्रारब्ध और उद्योग

ने सोलह प्रहर के अन्तर में ही असहाय शिवाजी को सर्वसाधन-सम्पन्न बना दिया, जिसके बल पर वे अपना महाराज्य कायम कर सके।

१६

शाहजी अन्धे कुए में

शाही खजाना लूटकर शिवाजी ने चढ़ी रकाव कंगोरी, टोंगटकोट, भोरपा, कादरी और लोहगढ़ को भी कब्जे में कर लिया। और कोंकण-प्रदेश को लूट कर अपरिमित सम्पत्ति जमा कर ली। कल्यान पर चढ़ाई करके मुल्ला अहमद को कैद कर लिया। इससे इस इलाके के सब किले शिवाजी के हाथ आ गए। शिवाजी ने मालूजी सोनदेव को इस नए इलाके का सूबेदार नियत कर दिया। मालगुजारी का प्रबन्ध प्राचीन रीति पर आरम्भ किया, मन्दिरों की जो सम्पत्ति मुसलमानों द्वारा जब्त करली गई थी, वह फिर मन्दिरों को दे दी गई। कई मोर्चों पर नए किले बनाए गए।

इन सब खबरों को सुनकर आदिलशाह तिलमिला उठा। इस समय शाहजी कर्नाटक में बड़े जोरों से युद्ध कर रहे थे। उसने तत्काल उन्हें कैद करने और उनकी सब सम्पत्ति जव्त करने की आज्ञा दे दी। परन्तु शाहजी को कैद करना आसान काम न था। अतः उसने अपने विश्वस्त अनुचरों को भेजा कि वे किसी तरह युक्ति से उन्हें कैद करलें। इन व्यक्तियों में एक वाजी घोरपांडे था। उसने शाहजी को दावत का निमन्त्रण देकर अपने घर बुला लिया, और कैद कर लिया। तथा रातों-रात पैरों में बेड़ी डालकर हथिनी के बन्द हौदे पर बीजापुर रवाना कर दिया।

बादशाह ने उनकी बड़ी लानत-मलामत की और डराया-धमकाया। परन्तु शाहजी ने कहा—"मुझे शिवाजी के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है, न मेरा कोई शिवाजी से सम्बन्ध ही है, वह जैसा आपसे बागी है, वैसाही मुझसे भी बागी है।"

लेकिन आदिलशाह ने एक न सुनी। वह क्रोध से अन्धा हो रहा था। उसने हुक्म दिया कि शाहजी को एक अन्धे कुए में डाल दिया जाय। और एक सूराख़ को छोड़ कर उसका मुंह भी चिन दिया जाय। शिवाजी यदि अब भी अपनी हरकतें बन्द न करेगा तो वह सूराख भी बन्द कर दिया जायगा और शाहजी को जिन्दा दफन कर दिया जायगा।

यह समाचार शिवाजी को मिला तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। एक तरफ पिता के प्राणों की रक्षा थी और दूसरी तरफ स्वतन्त्रता की बरसों की कमाई थी जिस पर अब फल आने वाला था।

परन्तु शिवाजी की बुद्धि कठिनाई में बहुत काम करती थी। उन्होंने अपने मुत्सद्दियों से सोच-विचार करके शाहजहां से सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने अपने मन्त्री रघुनाथ पन्त को औरङ्गाबाद शाहजादा मुराद की सेवा में प्रस्ताव लेकर भेजा। रघुनाथ पन्त ने संक्षेप में अपना अभिप्राय कह सुनाया तथा शाहजी के छुटकारे की प्रार्थना की। मुराद राजनीति में अदूरदर्शी और कमअक्ल आदमी था। इस समय औरङ्गजेब काबुल और मुलतान का सूबेदार था और मुरादबख्श दक्षिण का। बादशाह शाहजहां पर इस समय फारस का बड़ा दबाब पड़ रहा था। फारस के शाह अब्बास ने एक बड़ी सेना लेकर कन्धार पर आक्रमण किया हुआ था और औरङ्गजेब की करारी हार हो रही थी। इसलिए बादशाह का सारा ध्यान उधर ही लगा हुआ था। शाही खजाने का बारह करोड़ रुपया इस मुहिम में खर्च हो चुका था।

शिवाजी के दूत रघुनाथ पन्त ने औरङ्गाबाद आकर मुरादबख्श की चौखट चूमी। सब हाल सुनकर मुराद ने तनिक भी गम्भीरता प्रकट न की। उसने कहा—"यह शाहजी नाम तो किसी हिन्दू का अजीबो-गरीब है।"

"खुदावन्द, इनके वालिद बुजुर्गवार मालोजी भोंसला को जब अर्से तक औलाद न हुई तो उनकी बीवी दीपाबाई ने बहुत दान-पुण्य किया और मालोजी ने शाह शरीफ की ज्यारत भी की। उन्हीं की दुआ से उनको दो बेटे हुए जिनके नाम शाहजी व शरीफजी रखे गए।"

"खैर, तो यह खानदान शाह साहब की दुआ से चला है।"

"जी हां खुदावन्द ! खुद शाह साहब भी एक फकीर आदमी हैं।"

"तो यह फकीर हमारे हुजूर से क्या मांगता है ?"

"महज़ कैद से रिहाई।"

"लेकिन उनकी शाही खिदमात तो कुछ हैं नहीं ?"

"बजा इर्शाद है साहिबे आलम, हकीकत यह है कि उन्होंने अपने पुराने मालिक निजामशाह का नमक अदा कर दिया। उनके लिए छः साल तक निहायत वफादारी से लड़े और अजीम सल्तनत मुगलिया से जबर्दस्त टक्करें लीं। यह उनकी बहादुरी, जांनिसारी और बफादारी के सुबूत हैं। अगर हुजूर पसन्द फर्माएँ तो ये सब औसाफ हुजूर के कदमों में हाजिर हैं।"

"लेकिन हमने सुना है कि उसने निजामशाही को छोड़कर मुगलों की जागीरदारी कुबूल की थी। लेकिन बाद में बीजापुर आकर हम पर हमला किया। अलावा अजीं शिवाजी भी बीजापुर से बगावत कर रहा है।"

"पनाह आलम, शिवाजी न बीजापुर के नौकर हैं, न जागीरदार। शाह ने उनकी हर तरह दिलजोई की, मगर उन्होंने शाही खिदमत पसन्द नहीं की। रही शाहजी की बात, वह अर्ज करता हूँ कि जब निजामशाही डूब रही थी, तब उन्होंने मुगलों की जेर हुकूमत न आकर अपनी जागीर बचाई। और बाद में भी निजामशाह ने ही उनकी जागीर में दस्तन्दराजी की। फिर भी वे बीजापुर से मदद लेकर अपने पुराने मालिक

निजामशाही को बचाने की जी-जान से कोशिश करते रहे। अब शिवाजी जो कुछ कर रहे हैं, डंके की चोट कर रहे हैं। उनसे कुछ न कहकर अपने वफादार शाहजी को महज़ शक पर कैद रखना कहां तक इन्साफ समझा जा सकता है। उन्हें अन्धे कुए में डाला जा चुका है और अब हुजूर की नजर नेक न हुई तो ऐसा एक बहादुर कुत्ते की मौत मर जायगा जो बहादुर, दयानतदार और जांनिसार खादिमों का सरताज है।"

"खैर, तो यदि हमारी सरकार उसे कुछ इमदाद फरमाए तो वह सल्तनत का क्या फ़ायदा करेगा ?"

"साहिबे आलम, शाहजी राजे कर्नाटक के बादशाह हैं। कोई माई का लाल उनका मुकाबिला करने वाला दक्षिण में नहीं है। अब अगर हुजूर की मदद से वह आजाद हो जाएँ तो सल्तनत बीजापुर हुजूर के क़दमों में आ गिरेगी। मेरे मालिक शिवाजी ने अकेले ही अपना राज्य खड़ा किया है। अब अगर सल्तनत मुगलिया का सहारा होगा तो बस बीजापुर शहंशाहे मुगलिया का एक सूबा बना बनाया है।"

मुराद पर रघुनाथ पन्त की बातों का गहरा प्रभाव पड़ा। शाहजहाँ बहुत दिन से दक्षिण में पांव फैलाना चाहता था। उसने शिवाजी की प्रार्थना स्वीकार कर ली। मुरादबख्श ने शाहजी राजा के नाम परवाना शाही जारी कर दिया कि वे सल्तनत मुगलिया के सरदार मुकर्रिर फरमाए गए हैं तथा उनके बेटे शम्भाजी को पंज हजारी का मनसब अता किया जाता है।

यह परवाना पहुँचते ही बीजापुर को झख मारकर शाहजी को छोड़ देना पड़ा। साथ ही शाहजी के पास सीधा एक शाही रुक्का पहुँचा कि तुम्हारे सब कुसूर माफ किए गए और तुम्हें हमारे हुजूर में गुलाम खास का रुतबा दिया गया है। बस, तुम हमारी ओर से बीजापुर दरबार में ही अभी रहो।

१७

जावली विजय

सतारा जिले के उत्तर पश्चिमी कोने के बिलकुल छोर पर जावली नाम का एक गांव था, जो उन दिनों एक बड़े राज्य का केन्द्र था। उस राज्य का स्वामी चन्द्रराव मोरे एक मराठा सरदार था, और उसके अधीन कोई १२०० पैदल सिपाही थे—जो वीर पहाड़ी जाति के थे। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यह राज्य दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की दिशा में शिवाजी की महत्वाकांक्षा में एक बाधा थी।

शाहजी के मामले से अली आदिलशाह भीतर-ही-भीतर घुट कर रह गया। अब वह न शिवाजी का कुछ बिगाड़ सकता था, न शाहजी का। परन्तु वह शिवाजी से अब और भी चौकन्ना हो गया और वह उन्हें गिरफ्तार करने या मरवा डालने का षड्यन्त्र रचने लगा। शिवाजी को जीता या मरा लाकर शाह के हुजूर में पेश करने का बीड़ा एक मराठा सरदार ने उठाया। इस सरदार का नाम बाजी शामराव था। वह छद्मदेश में अपने आदमियों के साथ शिवाजी की घात में रहने लगा। परन्तु शिवाजी को उसकी खबर लग गई और उन्होंने उस पर आक्रमण कर दिया। पर वह बचकर जंगलों में भाग निकला। जावली के राजा चन्द्रराव ने उसे भाग जाने में मदद दी। जावली का राजा अत्यन्त चापलूस, स्वार्थी और नीचाशय था। वह गुप्त रूप में बाजी शामराव के षड्यन्त्र में भी सम्मिलित था। चन्द्रराव मोरे अपने को उच्चवंशज और भोंसले को नीच समझता था। वह आदिलशाह का सामन्त भी था। अतः उसे प्रसन्न करने के विचार से ही उसने शामराव को मदद की थी।

अब शिवाजी स्वयं जावली जा धमके। उन्होंने चन्द्रराव के सामने दो शर्तें रखीं या तो लड़ो या आधीनता स्वीकार करो। शिवाजी

ने अपने ताबेदार राघोवल्लाल अत्रे व शम्भाजी कावजी, नामक दूत उसके पास भेजे, पर उसने दूतों का अपमान किया। बात-ही-बात में बात बढ़ गई और राघो ने अकस्मात् ही चन्द्रराव के कलेजे में कटार घोंप दी; चन्द्रराव मारा गया। इस प्रकार अचानक चन्द्रराव के मारे जाने से तहलका मच गया और जबतक जावली के सिपाही तैयार हों, संकेत पाकर शिवाजी बाज की भाँति टूट पड़े और छः घण्टे की कठिन मारकाट के बाद जावली पर शिवाजी का अधिकार हो गया। मोरे-वंश का चिरकाल से संचित खजाना शिवाजी के हाथ लगा। जिससे उन्होंने प्रतापगढ़ का नया प्रसिद्ध किला बनवाया। जावली का इलाका शिवाजी के राज्य में मिला लिया गया। अब शिवाजी ने बीजापुर दरबार के कपट का भी जवाब दिया। कोंकण के समुद्र तट से लगभग बीस मील दूर एक छोटा-सा द्वीप था जिसे जंजीरा कहते थे। मलिक अम्बर ने उसे अपनी समुद्री शक्ति के संगठन का केन्द्र बनाया था। पर अब वह बीजापुर के तावे था। शिवाजी के राजगढ़ से वह पास ही था। उन्होंने इस स्थान का सामरिक महत्व समझ कर अपने सेनापति पेशवा शाम-राव नीलकण्ठ को एक बड़ी सेना देकर भेजा, पर वहां के किलेदार फतहखाँ ने उसे खदेड़ दिया। तब उन्होंने राघोवल्लाल अत्रे को वहाँ रवाना किया।

१८

दक्षिण की राजनैतिक स्थिति

सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में महान बहमनी राज्यवंश का अन्त हुआ। आदिलशाह और निजामशाह उसके उत्तराधिकारी बने। गुलबर्गा के सुलतानों द्वारा आरम्भ की गई इस्लामी राज्य की परम्पराओं का अहमदनगर और बीजापुर के केन्द्रों से पालन होने लगा। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के पहले चरण में ही निजामशाही की सदैव

के लिए समाप्ति हो गई और दक्षिण में अब तक जो मुसलमानी राज्यों का नेतृत्व अहमदनगर से होता था, उसका भार बीजापुर पर आ पड़ा। परन्तु इसी समय दक्षिण में मुगलों ने पदार्पण किया। सत्रहवीं शताब्दी के दक्षिण भारतीय इतिहास की यह महत्वपूर्ण घटना थी। सोलहवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में ही यद्यपि मुगल साम्राज्य की दक्षिणी सीमा निर्धारित हो चुकी थी पर अब बीजापुर का दक्षिण में अकेला डंका बज रहा था। इस समय वह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था और उसका राज्य भारतीय प्रायद्वीप के दोनों समुद्री तटों तक फैल गया था, तथा उसकी राजधानी कला, साहित्य, धर्म और विज्ञान की उन्नति का केन्द्र बन गई थी। परन्तु इस राज्य के संस्थापक योद्धा-सुलतानों का उत्तराधिकारी अब युद्धभूमि और घोड़े की सवारी से मुंह मोड़कर दरबारी शान और अन्तःपुर के विलास में डूब चुका था, और इसका परिणाम यह हुआ था कि आदिलशाही सुलतान की मृत्यु के बाद दक्षिण की अवशिष्ट मुसलमानी रियासतें तेजी से मुगल साम्राज्य के आधीन होती चली जा रही थीं। इसी समय दक्षिण भारत की राजनीति में मराठों का उदय होने से वहां की राजनीति में अतर्कित उलटफेर हुए। मराठे चिरकाल से दक्षिण भारत में रहते आ रहे थे और शताब्दियों से अपनी ही जन्मभूमि में विदेशी मुस्लिम शासकों की प्रजा बने हुए थे। न तो उनका कोई राजनैतिक संगठन ही था, न उन्हें कोई अधिकार ही प्राप्त थे। इन बिखरे हुए मराठों को संगठित कर एक जाति में परिणत करके उन्हें मुगल साम्राज्य पर चोट करने की योग्यता औरङ्गजेब के प्रतिद्वन्द्वी शिवाजी ने प्रदान की।

सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सम्राट् अकबर ने विन्ध्याचल से आगे कदम रखकर दक्षिण की ओर रुख किया था। उसके बाद बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों पर निरन्तर आघात होते रहे। और उनका अस्तित्व मिटाकर उन्हें मुगल साम्राज्य में मिलाने के

लिए बड़े-बड़े प्रयत्न हुए और अन्त में अन्तिम कुतुबशाही की राजधानी गोलकुण्डामें औरंगजेब ने विजयीके रूपमें प्रवेश किया। अब यह शिवाजी की अनोखी प्रतिभा और कूटनीति थी कि उन्होंने दक्षिण के इन राज्यों से मित्रता का संगठन करके मुगल साम्राज्य की दक्षिणी सीमाओं पर आघात करना आरम्भ किया और उधर मुगल साम्राज्य मराठों से डर कर बीजापुर और गोलकुण्डा के सामने मैत्री का हाथ फैलाने को बाध्य हुआ। मुगलों के भय से गोलकुण्डा का सुलतान भी शिवाजी से जा मिला, परन्तु बीजापुर ने सन्देह के वातावरण में शिवाजी की मित्रता स्वीकार की, बाद में जब बीजापुर पर मुगलों के निरन्तर आक्रमण होने लगे तो आदिलशाह निरुपाय हो शिवाजी के साए में आ खड़ा हुआ। परन्तु बीजापुर की यह मित्रता जल्दी ही समाप्त हो गई क्योंकि इस समय शिवाजी उसके किलों और प्रदेशों को हड़प करते जा रहे थे। बीजापुर की हालत दिन पर दिन निराशापूर्ण होती चली जा रही थी। आदिलशाह द्वितीय शराब पीते-पीते मर गया, और नाबालिग सुलतान सिकन्दर के गद्दी पर बैठने पर वज़ारत की मसनद हथियाने को परस्पर झगड़े होने लगे और शासन एकबारगी डगमगा गया। इस प्रकार स्वतन्त्र शक्ति के रूप में शिवाजी को उत्थान का अवसर मिला। शिवाजी ने मुगल प्रदेशों पर अधिकार करने का कोई भी मौका नहीं चूका। दिल्ली के मुगल बादशाहों की संधि की शर्तों पर उन्हें तनिक भी विश्वास न था। शिवाजी बीजापुर की हानि करके ही अपना राज्य बढ़ा सकते थे। परन्तु बाद में उन्होंने आदिलशाही मंत्रियों से समझौता कर लिया और अब उनकी सारी शक्ति मुगल साम्राज्य के विरोध में जुट गई।

१६

सह्याद्रि की चट्टानें

महाराष्ट्र का उत्थान ऐसी उग्रता से प्रचण्ड अग्निशिखा के

समान हुआ कि उसने मुगल साम्राज्यको भस्म ही कर दिया। वास्तव में सह्याद्रि की यह दावाग्नि शताब्दियों से गहराई में दबी हुई थी। मुगल साम्राज्य पर सिखों के, राजपूतों के, बुन्देलों के, जाटों के और दूसरी सत्ताओं के जो धक्के लगे, वे तो मुगल साम्राज्य की दीवारों को केवल हिलाकर ही रह गए, किन्तु सह्याद्रि की ज्वाला ने मुगल-तख्त को भस्म ही कर दिया। महाराष्ट्र की भूमि का पश्चिमी भाग बहुत रूखा है, वहाँ के निवासियों को पेट भरने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती थी, वे गङ्गा और यमुना के किनारों पर रहने वाले लोगों की तरह हल जोत कर आसानी से अन्न न उपजा सकते थे। उन दिनों महाराष्ट्र की आबादी छोटी थी, न बड़े शहर थे न मालदार मंडियाँ। लोग या तो खेती करते थे या फौज में भर्ती होकर लड़ते थे। इस प्रकार प्रकृति ने उन्हें परिश्रमी और कष्ट-सहिष्णु बना दिया था।

दक्षिण निवासियों की स्वाधीनता की रक्षा कुछ प्राकृतिक कारणों से भी होती रही। भारत पर मुसलमानों का आक्रमण उत्तर के पर्वतों से हुआ। इसलिए आक्रमणकारियों का सबसे अधिक प्रभाव पंजाब पर पड़ा और मध्य प्रदेशों तक उसका वेग कायम रहा। परन्तु दक्षिण पहुँचते-पहुँचते यह वेग निर्बल हो गया, इसी से जब उत्तर भारत में मुगल साम्राज्य का प्रताप तप रहा था, तब भी दक्षिण में विजयनगरम् जैसा जबरदस्त साम्राज्य प्रदीप्त था। मुसलमान विजेता दक्षिण में शताब्दियों तक स्थायी रूप से पांव न जमा सके। और जब दक्षिण में मुसलमानों की छोटी-छोटी रियासतें कायम होगईं तो उन्होंने उत्तर भारत की तरह वहाँ के हिन्दू निवासियों की आत्मा को नहीं कुचला। वे तो उनके सहारे पर ही जीवित रहतीं रहीं। बीजापुर, गोलकुण्डा या अहमदनगर के शासकों को अपनी शक्ति कायम रखने के लिए मराठा सरदारों और मराठा सिपाहियों से सहायता लेनी पड़ती थी और यही कारण था कि दक्षिण में मुसलमानी राज्य की जड़ें गह-

राई तक नहीं गई और उनका प्रजा की अन्तरात्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

कठोर भूमि पर रहने के कारण मराठों के चरित्र में जो विशेषताएँ पैदा हुईं, उनमें स्वाधीनता की भावना, निर्भयता, सादगी और शारीरिक स्फूर्ति महत्वपूर्ण थीं । महाराष्ट्रीय जाति आर्यों और द्रविड़ों के मिश्रण से उत्पन्न हुई थी, इसलिए उसके खून में आर्यों की सामाजिकता और द्रविड़ों की उद्दण्डता घर कर गई थी ।

महाराष्ट्रियों के धार्मिक विचारों पर भी सादगी का असर था । उत्तर भारत के हिन्दू जांत-पांत के बन्धन में फंसे थे, धर्म पर ब्राह्मणों की ठेकेदारी थी, देश की रक्षा करना केवल क्षत्रियों का काम समझा जाता था, परन्तु महाराष्ट्र में ऐसा न था । वहां एक राष्ट्र-धर्म, राष्ट्रीय एकता के बीच पनप रहा था जिसे आगे धर्म और नीति के सुधारक जनों ने पल्लवित किया । उस युग के महाराष्ट्रीय सुधारकों में सबसे प्रथम हम ज्ञानदेव का नाम लेंगे । उनका जन्म उस समय हुआ जब देवगिरि के यादवों का दक्षिण में भाग्य-सूर्य मध्याकाश में था । उस समय से लेकर शिवाजी के जन्म काल तक ५०० वर्षों में लगभग ५० ऐसे भक्त और सन्त पैदा हुए जिन्होंने जनता में वह विचार-क्रान्ति पैदा की कि जिसके फलस्वरूप शिवाजी अपना महाराज्य स्थापित कर सके । चांददेव, ज्ञानदेव, निवृत्ति, मुक्ताबाई, अक्काबाई, तुकाराम, नामदेव, एकनाथ, रामदास, शेख मुहम्मद, दामाजी, भानुदास, कूर्मदास, वोवले बावा, सन्तोबा पोबार, केशव स्वामी, जयराम स्वामी, नरहरि सुनार, सावता माली, जनार्दन पन्त आदि आदि सन्त उसी समय हुए । इनमें कुछ ब्राह्मण थे, कुछ स्त्रियां थीं, कुछ मुसलमान से हिन्दू बने हुए थे, बाकी कुन्बी, दरजी, माली, कुम्हार, सुनार, वेश्या, महार-चांडाल तक शामिल थे । इन्होंने हरिनाम की महिमा गान करके भक्ति मार्ग का उपदेश दिया । लोगों ने यह नहीं देखा कि कौन गा रहा है । जात-पांत

की उतनी महिमा न रही जितनी हरिनाम और श्रेष्ठ कर्म की। उन्होंने महाराष्ट्र की लोकभाषा में ग्रन्थ लिखे, कविताएँ कीं, गीत सुनाए और उसका यह परिणाम हुआ कि महाराष्ट्र में उदार सार्वजनिक धर्म की बुनियाद पड़ी और महाराष्ट्र में एक सत्ता का उदय हुआ। महाराष्ट्र की एकता को पंढरपुर के देवमन्दिर और उससे संबंधित यात्राओं से भी बहुत लाभ पहुँचा। यह पवित्र स्थान महाराष्ट्र का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान था।

ज्ञानदेव से लेकर रामदास तक जितने सन्त हुए, उन्होंने पंढरपुर को अपनी भक्ति का केन्द्र बनाया। हजारों पतित और अछूत समझे जाने वाले हरिजन पंढरपुर पहुँच कर पवित्र हो गए और पूज्य बन गए। इस प्रकार इन भक्तों एवं सन्तों ने लोकभाषा में कविताएँ बनाईं और उपदेश दिए। वही लोक-भाषा अन्ततः समूचे महाराष्ट्र की मराठी बन गई और उनके अन्दर एकता के भाव जाग्रत हुए। एक भाषा, एक धार्मिक प्रवृत्ति और एक से सामाजिक संस्कारों से मिलकर महाराष्ट्र में उस राज्य-क्रांति का उदय हुआ कि जिसने मुगल तख़्त की कब्र ही खोद दी।

मराठे बड़े कष्ट-सहिष्णु थे। प्रकृति ने उन्हें बलिष्ठ और सहिष्णु बनाया था। यहाँ के प्राकृतिक टेढ़े-मेढ़े और संकुचित पर्वतीय मार्गों ने उन्हें गुरिल्ला युद्ध में सिद्धहस्त कर दिया था। वे बिजली की तरह अपने असावधान शत्रुओं पर टूट पड़ते और उनके सावधान होने से प्रथम ही उन्हें लूटपाट कर सह्याद्रि की कन्दराओं में लोप हो जाते थे। अपने छोटे-छोटे टट्टुओं पर सवार भुने चने या मक्का के दानों पर ही निर्वाह करके शत्रु से निरन्तर युद्ध कर सकते थे। बीजापुर और गोलकुण्डा की सेना के साथ रहकर उन्होंने उच्च श्रेणी की युद्धकला में प्रवीणता प्राप्त की थी।

२०

मुगल साम्राज्य की कब्र

शताब्दियों तक इस्लामी राज्य का तूफान सह्याद्रि की चट्टानों से टकराकर विफल मनोरथ वापस लौटता रहा, यदि किसी को कुछ सफलता हुई भी तो वह चिरस्थायी न रही। मुगलों के लिए तो दक्षिण एक मृगतृष्णा ही बना रहा। अकबर से लेकर औरंगजेब तक सब बादशाहों ने दक्षिण पर ललचाई दृष्टि डाली, किन्तु विफलता ही प्राप्त हुई। जो यत्किंचित् सफलता प्राप्त हुई भी उसने मुगल साम्राज्य को ऐसे जाल में फांसा कि अन्त में दक्षिण ही मुगल साम्राज्य की क़ब्र बन गया।

सबसे पहले दक्षिण में कदम रखने का साहस अलाउद्दीन खिलजी ने किया और धोखा देकर देवगिरि के राजा रामदेव को मारकर देवगिरि को दौलताबाद बनाया। यह दक्षिण में मुसलमानी राज्य की बुनियाद थी। अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफ़ूर ने वारंगल और द्वारसमुद्र तक धावे किए और मैसूर तक का प्रदेश जीत लिया। परन्तु उसका यह राज्य-विस्तार अस्थायी और कमजोर ही रहा। उसके बाद मुहम्मद तुगलक दिल्ली की गद्दी पर बैठा और उसके दिल में यह सनक समाई कि दिल्ली के स्थान पर दक्षिण को ही केन्द्र बनाया जाय और दौलताबाद को राजधानी बनाया जाय। यह एक विचित्र, सनकी और जिद्दी आदमी था, उसने दिल्ली शहर के सब रईसों, अहलकारों और दूकानदारों को दौलताबाद में जा बसने का हुक्म दिया। शहर का शहर उठकर चल पड़ा, परन्तु लाखों आदमियों के ठहरने योग्य न सराय की व्यवस्था थी, न खाने के अनाज की, और न स्वास्थ्य-रक्षा का ही ठीक प्रबन्ध था। परिणाम यह हुआ कि हजारों आदमी रास्ते में मर गए और जो दौलताबाद तक पहुंचे, वे ऐसे दुर्दशाग्रस्त हो गए कि वे किसी शहर को बसाने के योग्य न थे। इस प्रकार दिल्ली उजड़ गई लेकिन

दौलताबाद आबाद न हुआ। अब उसने सबको दौलताबाद से दिल्ली वापस जाने का हुक्म दिया। अब प्रजा पर ऐसी दुहरी मार पड़ी कि भूख, गर्मी-सर्दी और यात्रा के कष्टों से बचकर बहुत कम लोग दिल्ली पहुँचे। खब्ती और सनकी बादशाह की मूर्खता से हजारों घर बर्बाद हो गए, राजधानी उजड़ गई और मुहम्मद तुगलक को भी विपत्तियों के समुद्र में डुबकियां लगानी पड़ीं। इसी समय तैमूरलंग ने आंधी की तरह भारत में प्रवेश किया। उसने पेशावर से दिल्ली तक मस्त हाथी की तरह भारतवर्ष को पददलित किया, जिसे देखा लूटा और कत्ल किया, अन्त में सबकुछ आग के सुपुर्द कर दिया। दिल्ली उसके सिपाहियों की तलवार और आग से तबाह हो गई, और ये डाकू बर्बाद शहर तथा उजड़े हुए घरों को, विधवाओं और अनाथों के हाहाकार से भरकर एवं फूट और महामारी के अर्पण करके वापस लौट गया। उसके बाद महीनों दिल्ली बिना बादशाह के रही। बाद में लोधी वंश ने गद्दी को संभाला, परन्तु उसका शासन दिल्ली के घेरे से अधिक दूर तक नहीं था। आस-पास के प्रान्तों ने दिल्ली की आधीनता का जुआ उतार फेंका, दक्षिण में तीन सशक्त राज्यों की स्थापना हुई—एक तैलंगाना राज्य, दूसरा विजय-नगर साम्राज्य, तीसरा बहमनी मुस्लिम राज्य। कालान्तर में बहमनी राज्य चार हिस्सों में बंट गया—आदिलशाही बीजापुर में निजामशाही अहमदनगर में, कुतुबशाही गोलकुण्डा में और इमारशाही बरार में एलिचपुर के निकट।

जिस समय का उल्लेख इस उपन्यास में है, विजयनगर और तैलंगाना के राज्य मुसलमानी रियासतों में मिल चुके थे। अकबर और जहांगीर ने बहुत चाहा कि वे काश्मीर से कन्याकुमारी तक मुगल साम्राज्य का विस्तार करें। परन्तु उन्हें आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई। केवल बरार और खानदेश ही उनके हाथ लग पाए। अहमदनगर के बादशाहों के साथ मुगलों के संघर्ष सन् १६३५ तक जारी रहे, इसी प्रकार

बीजापुर के साथ भी मुगलों का संघर्ष रहा। परन्तु विशेष लाभ न हुआ। शाहजहां ने जब बीजापुर का मर्दन करने के लिए स्वयं दक्षिण की यात्रा की, तब कहीं उसे यत्किंचित् सफलता मिली।

२१
औरंगजेब और शिवाजी

औरंगजेब एक बड़े ही विचित्र चरित्र का पुरुष था। उसके गुण और दोष महान थे। औरंगजेब का व्यक्तित्व इस्लाम के इतिहास पर अपना सिक्का छोड़ गया है। वह देखने में सुन्दर न था, लेकिन शरीर उसका गठीला था, युद्ध और व्यायाम का उसे शौक था। पढ़ने-लिखने में उसकी विशेष रुचि न थी, लेकिन बुद्धि उसकी खूब प्रखर थी। अरबी और फारसी बोलने में वह बड़ा दक्ष था। हिन्दी और तुर्की भी वह जानता था। परन्तु उसकी विशेष अभिरुचि इस्लाम के मजहबी साहित्य की ओर थी। कुरान और हदीस उसे कण्ठाग्र थे। लेकिन कलाओं से उसे घृणा थी। संगीत और चित्रकारी को वह कुफ्र कहता था। वह एक निडर और साहसी पुरुष था। परिस्थितियों ने उसकी निडरता व साहस को और भी बढ़ा दिया था। वह कट्टर मुसलमान था। उसकी कट्टरता दिन पर दिन बढ़ती ही गई। अन्त में यह कट्टरता उस पर इतनी छा गई कि उसके सब गुण दोष उसमें ढक गए। उसने मुस्लिम धर्मानुशासन को अक्षरशः क्रियात्मक रूप देने की चेष्टा की। निःसन्देह वह रेशमी गद्दों और संगमरमर के फर्शों पर खेला था, परन्तु दक्षिण के कठोर और कटीले मार्ग पर वह बड़ा हुआ। उसे कंधार की बर्फीली व दुर्गम घाटियों में अपना रास्ता निकालना पड़ा और कदम-कदम पर उसे अपने पैरों पर खड़े होने का अभ्यासी होना पड़ा। जब शासन की गहरी समस्याओं की आग में उसकी प्रतिभा को तपना पड़ा तो वह और उज्ज्वल हो उठी। निरन्तर युद्धों में फंसे रहने के कारण उसका साहस प्रचण्ड हो उठा। उसने बुन्देलखण्ड, दक्षिण, गुजरात, मुलतान, सिन्ध, बल्ख,

कन्धार में बड़े-बड़े युद्ध किए तथा हर जगह अपनी निराली सूझ-बूझ और अडिग धैर्य का परिचय दिया। उसकी शक्तियाँ निरन्तर उपयोग में आकर परिमार्जित और परिवर्धित होती चली गईं।

जिन दिनों शाहजी के मामले को लेकर शिवाजी ने मुगलों से सम्पर्क स्थापित किया, और अपनी स्थिति की दृढ़ता में एक नया दृष्टिकोण प्राप्त किया, उन्हीं दिनों मुगल साम्राज्य को पश्चिम में एक करारी टक्कर लगी। बारह करोड़ का व्यय और अपार जनशक्ति का क्षय करके भी कन्धार उसके हाथ से निकल गया। इस घटना का जिम्मेदार औरंगजेब को ठहराया गया जो उन दिनों काबुल-मुलतान का सूवेदार था। शाहजहाँ ने क्रुद्ध होकर औरंगजेब के सब पद और पैन्शन बन्द कर दिए और उसे वापस आगरा बुला लिया। औरंगजेब ताव खाकर रह गया। एक तो शत्रु से करारी हार, दूसरे पिता द्वारा यह अपमान, तीसरे दरबार की नजर में गिर जाना—यह सब बातें ऐसी थीं जो औरंगजेब की प्रकृति के प्रतिकूल थीं। वह अब शाहजहाँ से घृणा करता था और जहाँ तक सम्भव हो, आगरे से दूर रहना चाहता था। बेगम जहांनारा उसकी पीठ पर थी, उसके द्वारा औरंगजेब ने सिफारिश कराई और किसी तरह वह सन् १६५३ में फिर दक्षिण का सूवेदार बन गया। इस बार मुर्शिदकुली खां भी उसके साथ दक्षिण आया। इस बार दक्षिण आकर वह भूमि-व्यवस्था में लग गया। मुर्शिदकुली खां सुयोग्य माल पदाधिकारी था। उससे उसे भारी सहायता मिली। इस प्रकार दक्षिण में उसने अपनी स्थिति ठीक की और फिर बीजापुर की ओर नजर उठाई। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को पूर्णतया समाप्त कर डालने का पक्का इरादा कर लिया। अब तक ये सुलतान स्वतन्त्र शासक की भांति रहते थे और फारस के शाह को अपना सम्राट् मानते थे। मुगल साम्राज्य में वे दारा से मिले रहते थे। इसके अतिरिक्त वे शिया थे। औरंगजेब अब किसी सुअवसर की ताक में रहने लगा। उसे वह अवसर

भी शीघ्र ही मिल गया। गोलकुण्डा का मन्त्री मीर जुमला अपने सुल्तान से बिगड़ खड़ा हुआ और उसने औरंगजेब से मिलकर कुतुबशाही का सर्वनाश करने का षड्यन्त्र रचा और उसकी सहायता से औरंगजेब ने १६५६ में गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया।

बड़ी सरलता से रियासत विजय हो गई और सुलतान ने एक करोड़ रुपया नकद और खिराज देकर सन्धि कर ली, तथा ईरान के बादशाह के बदले शाहजहां को अपना सुलतान स्वीकार कर लिया।

इसी समय दस साल रोगी रहकर बीजापुर का सुलतान अली आदिलशाह मर गया। इन दस वर्षों में उसकी राज्य-व्यवस्था बहुत डांवाडोल हो गई थी। अब ज्यों ही सुलतान के मरने की खबर औरंगजेब ने सुनी, उसने बीजापुर की ओर नजर फेरी। उसने कूटनीति का सहारा लिया और कितने ही आदिलशाही सरदारों और अफसरों को घूंस देकर अपनी ओर मिला लिया। बीदर और कल्याण के किले उसने हथिया लिए और बीजापुर को जा घेरा।

शिवाजी बड़े विलक्षण राजनीतिज्ञ और कूटनीतिक पुरुष थे। वे बड़ी बारीकी से औरंगजेब की गतिविधि का अध्ययन कर रहे थे। इस अवसर पर उन्होंने बीजापुर की सहायता करने की नीति अपनाई और औरङ्गजेब का ध्यान बीजापुर से हटाने के लिए वे बड़ी तीव्रता से मुगलों की दक्षिण-पश्चिम सीमा पर आक्रमण करने लगे। तीन हजार घुड़सवारों को लेकर मानाजी भोंसले ने नीमा नदी को पार किया और मुगलों के चमारगुण्डा ताल्लुका के गांवों को लूट लिया। इसी समय उनके दूसरे सेनानायक कासी ने रायसीन ताल्लुका के गांवों को लूट डाला और अब ये दोनों हठीले मराठा सरदार लूटपाट और मारकाट करते हुए मुगल साम्राज्य के दक्षिणी सूबेके प्रधान नगर अहमदनगर की चहारदीवारी तक जा पहुंचे और वहां लूटमार करके सर्वत्र आतंक फैला दिया। जिस समय दक्षिण में शिवाजी के सेनानायक यह उत्पात मचा

रहे थे, ठीक उसी समय शिवाजी उत्तर में जुन्नर ताल्लुका को धड़ाधड़ लूट रहे थे और एक दिन अंधेरी रात में कमन्द के द्वारा वे जुन्नर शहर की चहारदीवारी को चुपके से फांद गए और वहां के पहरेदारों को मार कर तीन लाख हूण, २०० घोड़े, बहुत से बहुमूल्य वस्त्र और रत्न लेकर चम्पत हुए। इन उपद्रवों से घबराकर औरङ्गजेब ने नसीरीखां की कमान में तीन हजार घुड़सवार देकर अहमदनगर की ओर रवाना किया। उधर लूटमार करते हुए शिवाजी और उनके साथी अहमदनगर तक पहुंचे ही थे कि नसीरीखां और मुलतखतखां से उनकी जबरदस्त मुठभेड़ हुई। अपनी नीति के अनुसार साधारण-सी लड़ाई करके शिवाजी वहां से भाग खड़े हुए और तब मुगल सेना शिवाजी के प्रदेशों में घुस गई और जवाबी कार्यवाही के तौर पर वहाँ के गावों को उजाड़ने और मारकाट करने लगी। इसी समय शाहजहां ने बीजापुर से संधि कर ली और औरङ्गजेब को बीजापुर से अपना घेरा उठाना पड़ा।

यह घटनाएँ सन् १६५७ के ग्रीष्मकाल की हैं। परन्तु इसी समय बादशाह शाहजहाँ आगरे में बीमार पड़ा। और मुगल सिंहासन के उत्तराधिकार के लिए गृहयुद्ध की घटाएँ छा गईं। औरङ्गजेब आगरे की ओर चल दिया। बीजापुर राज्य में बहुत-से घरेलू झंझट उठ खड़े हुए थे, वहाँ के वजीर खान मोहम्मद की हत्या कर दी गई। अब परि-स्थितियों ने शिवाजी के सामने का मैदान साफ कर दिया था। उन्होंने क्षण भर भी विलम्ब न करके पश्चिमी घाट को पार किया और कोंकण में जा धमके। बिना ही किसी कठिनाई के कल्याण और भिवंडी के समृद्ध शहर उनके हाथ में आ गए, जहाँ से अथाह धन और अतुल सामग्री उनके हाथ लगी। कल्याण और भिवंडी को अपनी जलसेना का प्रमुख बन्दरगाह बनाया और माहुली का किला भी सर कर लिया। तभी खबर आई कि औरङ्गजेब ने बूढ़े शाहजहाँ को कैद करके तथा भाई मुराद और दारा को कत्ल करके आलमगीर के नाम से मुगल तख्त पर आरोहण किया है।

२२

सेर को सवा सेर

मुगलों से सन्धि करके बीजापुर दरबार को जरा साँस लेने की फुरसत मिली। बीजापुर का नया शासक अभी बच्चा ही था। उसकी माँ बड़ी साहिबा के नाम से सब काम-काज देखती थी। उसने सोचा कि इस अवसर पर अपने इस उठते हुए शत्रु को खत्म कर दिया जाय। शिवाजी को मार डालने का एक षड्यन्त्र विफल हो ही चुका था। इस समय बीजापुर दरबार में एक उच्च सरदार अब्दुल्ला था—जिसे कर्नाटक के युद्ध में वीरता दिखाने के उपलक्ष्य में अफजलखाँ का खिताब मिला था। वह सुलतान का कुछ सम्बन्धी भी था। बड़ी साहिबा ने उसी को समझा-बुझाकर पाँच हजार सवार तथा सात हजार पैदल सेना देकर शिवाजी की ओर रवाना कर दिया।

अफजलखाँ ने बड़े दर्प से कहा था कि मैं इस पहाड़ी चूहे को अपनी तलवार की नोंक पर रखकर ले आऊँगा। वह बड़े डील-डौल का आदमी था। इस समय शिवाजी जंजीरे के आक्रमण में फँसे हुए थे। परन्तु अफजल के आने की सूचना पाते ही उन्होंने प्रतापगढ़ की ओर प्रस्थान किया।

अफजलखाँ ने दक्षिण सीमा से शिवाजी के राज्य में प्रवेश किया। वह जल्द से जल्द पूना पहुंचना चाहता था। सबसे प्रथम उसने तुलजापुर के किले पर आक्रमण किया, वहाँ का भवानी का मन्दिर भङ्ग किया और मन्दिर में एक गाय का वध किया तथा उसका रुधिर सारे मन्दिर में छिड़का। पुजारी प्रथम ही मूर्ति को लेकर भाग गए थे। शिवाजी ने जब अजफलखाँ की गतिविधि देखी तो राजगढ़ से जावली में आकर युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। अजफलखाँ ने जब देखा कि शिवाजी ने अपना स्थान बदल दिया है तो वह दक्षिणी

सीमा को छोड़ पश्चिमी सीमा पर आगे बढ़ा और उसने पंढरपुर के आगे भीमा नदी को पार किया। उसने पंढरपुर के मन्दिर को भ्रष्ट किया, पुण्डलीक की मूर्ति को नदी में फेंक दिया और वाई की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचकर उसने शिवाजी के लिए एक लोहे का पिंजरा बनवाया। उसने दर्प से घोषणा की कि इसी पिंजरे में बन्द कर वह उस पहाड़ी चूहे को बीजापुर ले जायगा।

अफजलखाँ चाहता था कि या तो शिवाजी को सोते हुए किसी किले में घेर लिया जाय, या मन्दिरों को तोड़-फोड़ कर उसे इतना उत्तेजित कर दिया जाय कि वह पहाड़ी इलाके को छोड़कर मैदान में उतर आए। उसे भरोसा था कि मैदान में वह मराठों को गाजर-मूली की भाँति काट डालेगा। परन्तु शिवाजी का प्रबन्ध ऐसा था कि बीजापुर में पत्ता हिलता था तो शिवाजी के कान में आवाज आ जाती थी।

जब अफजल ने देखा कि शिवाजी को न तो किसी किले में पकड़ा जा सकता है, न पहाड़ी इलाके से बाहर ले जाया जा सकता है, तो उसने उसे धोखे-से मार डालने या पकड़ने की योजना बनाई।

मराठे सरदार घबरा रहे थे। अभी तक उन्होंने मुसलमानों के साथ सन्मुख युद्ध नहीं किया था। केवल छोटे-छोटे किलों पर ही आक्रमण किए थे। अफजलखाँ मशहूर सेनापति था। उसकी सेना सुगठित थी। शिवाजी के सरदारों के दिल दहल रहे थे। और शिवाजी के माथे पर चिन्ता की रेखाएँ उभर रही थीं।

शिवाजी का गुप्तचर विश्वासराव इस समय छद्म वेश में अफजल की सेना में था। वह क्षण-क्षण पर सूचनाएँ भेज रहा था।

बाई पहुँच कर अफजलखां ने एक पत्र देकर कृष्णजी भास्कर को दूत बनाकर शिवाजी के पास भेजा। पत्र में लिखा था—"तुम्हारा बाप मेरा दोस्त है। तुम भी मेरे लिए अजनबी नहीं। बस, बेहतर है

मुझसे आकर मिलो। मैं तुम्हें माफी दिलाऊँगा। और वे किले जो कोंकण में अब तुम्हारे कब्जे में हैं, तुम्हें दिलाऊँगा। यदि तुम दरबार में जाओगे तो तुम्हारा बड़ा स्वागत होगा।"

शिवाजी ने भरे दरवार में अफजलखां के दूत कृष्णाजी भास्कर का भारी स्वागत और आवभगत की और बड़ी नम्रता और आधीनता प्रकट की। यह भी प्रकट किया कि वह बहुत डर गए हैं। उन्होंने उसे महल में ही आदरपूर्वक ठहराया। भास्कर पण्डित अपने कार्य में सफल मनोरथ हो बहुत प्रसन्न हुए।

२३
ब्राह्मण और क्षत्रिय

आधीरात बीत चुकी थी। कृष्णाजी भास्कर सुख की नींद सो रहे थे। एकाएक खटका सुनकर उनकी आंख खुली। उन्होंने देखा—नंगी तलवार हाथ में लिए शिवाजी सामने खड़े हैं। कृष्णाजी भयभीत होकर शिवाजी की ओर ताकते रहे। उनके मुंह मे बात न फूटी।

शिवाजी ने कहा—"आपके सोने में विघ्न पड़ा न? पर आवश्यकता ही ऐसी आ पड़ी।"

"लेकिन, आपका अभिप्राय क्या है?"

"अभी बताता हूं। लेकिन आप शत्रु के दूत हैं, मेरे-आपके बीच यह तलवार रहनी चाहिए।" इतना कहकर उन्होंने तलवार आगे बढ़ाकर कृष्णाजी के पैरों के पास जमीन पर रख दी।

कृष्णाजी कुछ आश्वस्त होकर बोले—"आप मुझे शत्रु क्यों समझते हैं?"

"मैं यही जानना चाहता हूँ कि आपको क्या समझूं। कहिए, मैं कौन हूँ और आप कौन हैं?"

"यह भी कुछ पूछने की बात है। मैं हूँ वाई का कुलकर्णी

कृष्णजी भास्कर। और आप हैं राजा शाहजी के पुत्र पूना के जागीरदार।"

"यदि मेरी जागीर छिन जाय और आप कुलकर्णी या दीवान न रहें तो ?"

"तो मैं कृष्ण भास्कर ब्राह्मण और आप शिवाजी क्षत्रिय।"

"ठीक कहा आपने। तो ब्राह्मण देवता, ब्राह्मण सदा से क्षत्रियों को सदुपदेश देते आए हैं। आप भी मुझे कुछ सदुपदेश दीजिए। इसीलिए मैं आया हूँ। आपका शिष्य हूँ।"

"वाह, यह आप क्या कहते हैं।"

"खैर आप कहिए, आज गो-ब्राह्मण की क्या दशा है ?"

"दोनों संकट में हैं।"

"इस संकट से उनका उद्धार कैसे होगा ?"

"आप जैसे पुरुष सिंह ही उनका उद्धार कर सकते हैं।"

"मैं ही पुरुष सिंह क्यों ? इस आदिलशाही में तो ४० हजार हूणों के जागीरदार वहुत हैं।"

"सो तो है ही। पर आप जैसा साहस किस में है !"

"आपने क्या मेरा केवल साहस ही देखा ?"

"नहीं, कौशल भी, सद्भावना भी, पवित्रता भी।"

"बस ?"

"और भी, आप में इन बातों की परख की सामर्थ्य भी है, इसी से आपका कोई साथी आपको धोखा नहीं देता। और इसी कारण से आपने जो इतने अल्प काल में इतनी विजय की हैं, किसी दूसरे ने नहीं कीं।"

"परन्तु बीजापुर दरबार में दम होता तो क्या मैं सफलता प्राप्त कर सकता था ?"

"स्वीकार करता हूं, आदिलशाह जर्जर हो रहा है, शाहजहां के सहारे कुछ दिन चल गई। अब तो औरङ्गजेब बादशाह है। वह इसे कब छोड़ेगा।"

"और कुतुबशाही के विषय में आप क्या कहते हैं?"

"वह तो बीजापुर से भी गई-बीती है।"

"तो ब्राह्मण देवता, क्या यह बुद्धिमानी की बात नहीं कि डूबती नाव को छोड़ कर पृथ्वी पर पैर जमाया जाय। क्या नाव के साथ डूब मरना मूर्खता नहीं है?"

"परन्तु आप कहना क्या चाहते हैं—वह कहिए।"

" मैं तो कहता हूं कि आपके खां-साहब डूबती नाव पर सवार हैं। उन्होंने तुलजापुर की भवानी का मन्दिर गोवध करके भ्रष्ट कर दिया। कहिए मेरा ही धर्म गया या आपका भी।"

"सभी का गया, अनर्थ ही है।"

"तो भूदेव, धर्म की रक्षा कीजिए।"

"मैं ब्राह्मण असहाय अकेला क्या कर सकता हूं?"

"आप अकेले क्यों हैं? यह सेवक आपका शिष्य और यजमान है। आप ब्राह्मण हैं और मैं क्षत्रिय। आप उपदेश दीजिए। यह भवानी की तलवार आपके सामने है। इसे मन्त्रपूत करके मेरे हाथ में दीजिए। कहिए, धर्म संस्थापनार्थाय विनाशाय च दुष्कृताम्।"

"पर मैं पराया दास हूं। ऐसा नहीं कर सकता।"

"तो उतारिए जनेऊ। आप म्लेच्छों के दास हैं तो ब्राह्मण नहीं रह सकते। म्लेच्छों के इस दास का मैं अभी वध करूंगा। मुझे भवानी का आदेश है।" यह कह कर शिवाजी ने लाल-लाल आँखें करके नङ्गी तलवार उठाली।

ब्राह्मण डर गया। उसने कहा—"आप मुझ ब्राह्मण के साथ विश्वासघात करते हैं—अपना अतिथि बनाकर ?"

"मैंने तो ब्राह्मण के चरणों में प्रथम ही तलवार रख दी थी। पर आप तो कहते हैं मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, म्लेच्छ का दास हूँ।"

"परन्तु मैं ब्राह्मण तो हूँ ही।"

"तो दीजिए मुझे धर्मोपदेश, मैं आपका शिष्य हूँ।" शिवाजी ने घुटनों के बल बैठकर ब्राह्मण के चरणों में सिर झुका दिया।

"शिवराज, महाराज उठिए। आपने मुझे धर्म-संकट में डाल दिया है। किन्तु आप कहिए आप क्या चाहते हैं। पर यह मत भूलिए कि मैं आदिलशाह का प्रतिष्ठित कुलकर्णी हूँ।"

"क्या मेरे पिता आदिलशाही में कम प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने ही उन्हें आधा राज्य जीत कर दिया है। दस बरस तक जब तक शाह रुग्ण-शैय्या पर रहे, मेरे पिता ही की तलवार की धार पर उनका राज्य सुरक्षित रहा।"

"यह सच है महाराज !"

"और आदिलशाही आज मेरा मुंह ताकती है। मैं यदि आज उस दरबार में जा खड़ा होऊँ तो शाही आँखें मेरे तलुए पर आ गिरेंगी।"

"निस्सन्देह, फिर भी आप इस सम्मान की ओर नहीं देखते।"

"मैं धर्म की ओर देखता हूँ, कर्तव्य की ओर देखता हूँ, गो-ब्राह्मणों की असहायावस्था की ओर देखता हूँ।"

"आप अलौकिक पुरुष हैं, महाराज शिवाजी।"

"किन्तु आदिलशाही एक कृष्णजी को पालती है तो डेढ़ करोड़ भास्करों को पीड़ित कराती है कृष्णजी के ही हाथों।"

"मेरे हाथों कैसे ?"

"आप किसलिए मेरे पास आए हैं, कहिए तो। इसीलिए न

कि मैं चलकर अपना सिर म्लेच्छ को झुकाऊँ और आपकी भांति देश-धर्म की ओर से अन्धा होकर मौज करूँ।"

"तो मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?"

"मेरे लिए नहीं, अपने लिए भी नहीं। धर्म और असहाय करोड़ों नर-नारियों के लिए कीजिए।"

"क्या करूँ ?"

"मुझे उपदेश दीजिए, आदेश दीजिए, कर्तव्य बताइए, पवित्र जनेऊ छूकर; क्या मैं अत्याचार के दमन में प्रवृत्त होऊँ ?"

"ओह, आप तो मुझे स्वामी से विश्वासघात करने को कहते हैं।"

"ब्राह्मण का स्वामी भगवान है। वह सब मनुष्यों का शास्ता है। यह आप ब्राह्मण की भाँति नहीं बोल रहे हैं। या तो ब्राह्मण की भांति मुझे आदेश दीजिए या उतारिए जनेऊ।"

"नहीं ! मैं ब्राह्मणत्व को नहीं त्याग सकता। सिर कटा सकता हूँ।"

"तो मुझ शिष्य को उपदेश दीजिए, गुरुवर !"

कृष्णजी भास्कर की आंखों मे झर-झर आंसू बहने लगे। उन्होंने जनेऊ छूकर दोनों हाथ उठाकर कहा—"महाराज शिवाजी, गो-ब्राह्मण प्रजा और धर्म की रक्षा कीजिए। आशीर्वाद देता हूँ, आप सफल हों।"

"तो अपने हाथों से मन्त्रपूत करके यह तलवार मेरी कमर में बाँधिए।"

भास्कर ने यन्त्रचालित की भाँति मन्त्र पढ़कर तलवार शिवाजी की कमर में बांध दी। शिवाजी ने झुककर ब्राह्मण के चरण छुए। फिर कहा—"अब आप क्या करेंगे ? अब भी म्लेच्छ के दास होकर मुझे अपराधी कहकर मेरा गला काटेंगे ?"

"ऐसा नराधम मैं नहीं हूँ। आप जैसे नर-रत्न का जिसने साथ नहीं दिया, वह पुरुष कैसा ?"

"धन्य हैं आप कृष्णजी, आपने सब ब्राह्मणों की मर्यादा रख ली। अब गुरु-दक्षिणा मांगिए।"

"आप महानुभाव हैं। देश के करोड़ों जनों पर आपकी नजर है। मुझे तो यदि हिवरा ग्राम ही मिल जाता तो बहुत था। परन्तु मैं मांग नहीं रहा। एक बात कही।"

"मांगिए तो बेजा क्या है ? तो सुनिए, आप मेरा काम करें या न करें हिवरा ग्राम आपका हो चुका। चलते समय मैं आपको ५००० हूण, मोतियों की माला, सोने का कण्ठा, स्वर्ण-पदक, और एक अच्छा अरबी घोड़ा भेंट करूँगा। यह भेंट बीजापुर राज्य के दीवान कृष्णजी की होगी।"

"इतनी बड़ी भेंट ?"

"मैं बहुत डर गया हूँ। इसी से अफजलखाँ के दीवान को इतनी भारी भेंट दे रहा हूँ।"

"यह गोरखधन्धा मेरी समझ में नहीं आया। दरबार में आपने बीजापुर की आधीनता दीनतापूर्वक स्वीकार की और इस समय ऐसी बातें कहीं कि मेरा अचल मन भी डिग गया। अब फिर कहते हैं कि डर गया हूँ।"

"कृष्णजी, हर बात का प्रयोजन होता है। आप खाँ साहब को समझाइए कि शिवाजी बहुत डर गया है और उसे सब भाँति आधीनता स्वीकार है। हर तरह विश्वास दिलाकर उसे प्रतापगढ़ के नीचे तक ससैन्य ले आइए। और यहीं मुझसे मिलाइए।"

"आपका मन्त्र गूढ़ है। परन्तु आज से मैं आपका सेवक हुआ। आपके अभिप्राय से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। मैं आपकी आज्ञापालन करूँगा।"

"मुझे आप जैसे नैष्ठिक ब्राह्मण से यही आशा थी। अब कृपा कर उधर का हाल भी बता दीजिए।"

"खान आपको जीता या मरा पकड़ने का बीड़ा उठाकर यहाँ आया है। और एक पिंजरा भी आपको बन्द करके लेजाने के लिए लाया है। उसके साथ ५००० खूंख्वार सवार और ७००० फौज पैदल तथा तोपखाना है। अब वह बाई में अपना पड़ाव डाले पड़ा है।"

"तो आप उससे कहिए कि मैं बाई जाने में डरता हूँ। मैं उससे जावली में मिलूंगा। मैं दो अनुचरों सहित निश्शस्त्र आऊँगा। खान भी दो ही अनुचर साथ रखेगा जिनमें एक आप होंगे।"

"खैर, यह प्रबन्ध मैं कर लूंगा। पर आपके पास तो काफी सेना है। आप उसे सम्मुख युद्ध में भी हरा सकते हैं।"

"शायद खाँ साहब अच्छी शर्तों पर सन्धि करलें। काहे को व्यर्थ जानें बर्बाद की जाएँ।"

"अब इसकी आशा खान से मत कीजिए।"

"आशा मैं नहीं करता हूँ। केवल बात करता हूँ।"

"तो आप खाँ साहब को निमन्त्रण देने किसे भेजेंगे?"

"गोपीनाथ पन्त को।"

"अच्छा तो मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहिए।"

"यह ब्राह्मण का वाक्य भला मैं भूल सकता हूँ। अब आप विश्राम कीजिए।"

इतना कहकर शिवाजी कक्ष से बाहर निकल आए, कृष्णजी बड़ी देर तक विचारों की उधेड़-बुन में लगे रहे।

२४
अफजल की आशा

कृष्णाजी भास्कर ने लौटकर अफजल को विश्वास दिलाया कि शिवाजी बहुत डर गया है और वह हमारी ही शर्तों पर आत्म-समर्पण करने को राजी है। अब आप ऐसी चतुराई से उसे पकड़िए कि उसे तनिक भी शक न हो। वह बड़ा ही चालाक आदमी है। जरा भी शक हुआ तो उसकी गर्द भी न मिलेगी।"

"बस, तो मैं इतना ही चाहता हूँ कि वह पहाड़ी चूहा मेरे पिंजरे में आ फँसे।"

"यह काम तो कल हुआ ही रखा है।"

"लेकिन तुम कहते हो, वह वाई आना नहीं चाहता।"

"वह बहुत डर गया है हुजूर, मेरा खयाल है हमें इस पर जिद न करनी चाहिए—कहीं ऐसा न हो, वह शक करे और भाग जाय।"

"वह भाग जायगा तो मैं उसके एक-एक किले को जमींदोज कर दूंगा।"

"इससे कुछ फायदा नहीं होगा खाँ साहब, वह हवाई आदमी है। पीठ फेरते ही फिर शैतानी करेगा।"

"खैर, तो तुम्हारी राय है कि मैं उसकी राय मान लूं।"

"मुझे तो कोई हर्ज नजर नहीं आता। उसका कहना है कि दोनों अपनी-अपनी जगह से आगे बढ़कर बीच में मिलें।"

"लेकिन कहाँ?"

"प्रतापगढ़ और बाई के बीच में पाटगाँव है। गाँव वह अपना ही है। मैंने कहा है कि वही जगह ठीक रहेगी। वहाँ एक ऊँचा मैदान

है। वहीं आपका दरबार हो जायगा। हमारी फौजें एक तीर के फासले पर पास ही छिपी रहेंगी। जरूरत होते ही वे टूट पड़ेंगी।"

"ओह, इस अकेले पहाड़ी चूहे के लिए तो मेरी यह तलवार ही काफी है। उसकी मुझे क्या परवाह !"

"अच्छा तो दो आदमी हमारे पास कौन रहेंगे ?"

"एक मैं आपका सेवक, दूसरा सैयद बन्दा जिसकी तलवार की बराबरी दकन में कोई कर सकता है तो हुजूर ही हैं।"

"तलवार का जौहर तो तुम्हारा भी कम नहीं है, कृष्णजी ! अब कल उसकी बानगी देखी जायगी।"

"उसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी, हुजूर ! काम यों ही चुटकियों में हो जायगा। मैंने उसकी सब शर्तें मंजूर करके एक शर्त उससे मंजूर करा ली है कि वह खुद बिना हथियार आएगा और उसके साथ जो दो आदमी रहेंगे, उनके पास तलवारें तो होंगी पर वे दस गज के फासले पर रहेंगे।"

"उम्दा तजवीज है। इन्शा अल्ला, आला काम फतह होगा।"

उन्होंने शिवाजी के दूत गोपीनाथ को स्वीकृति देकर वापस भेज दिया।

२५

शिवाजी की तैयारी

जावली के चन्द्रराव मोरे के पास पीढ़ियों का संचित धन था। वह सब जावली के पतन के बाद शिवाजी के हाथ लगा। उस धन से उन्होंने प्रतापगढ़ नाम का दुर्ग बनवाया था। इस दुर्ग का सैनिक महत्व बहुत था। दक्षिण के एकदम सिरे पर यह दुर्ग एक महान् मंडल को सुरक्षित रखता था, और पश्चिम में दरह पार के ऊपर दक्षिण से कोंकण

जाने के मुख्य मार्ग पर था। उत्तर में सावित्री नदी और पश्चिम में कामना नदी दुर्ग की खाई का काम दे रही थी। पश्चिम की ओर एक विस्तृत पहाड़ी मैदान मीलों तक चला गया था जो कोंकण से मिल गया था। उसका एक सिरा साठ मील तक बल खाता हुआ समुद्र तट तक जा पहुँचा था। प्रतापगढ़ एक दुर्गम पर्वत शृंग पर पश्चिम में उत्तरी छोर पर था। किला अत्यन्त मजबूत था। उसके चारों ओर दुहरी पक्की चहारदीवारी थी।

ज्यों ही शिवाजी को अफजलखाँ के आने की सूचना मिली, वे राजगढ़ के निवास को छोड़ कर प्रतापगढ़ में आ गए थे। और यहीं वे उस खान से मोर्चा लेना चाहते थे। यहाँ से वाह में पड़ी हुई अफ़जलखाँ की सेना दीख पड़ती थी।

कृष्णाजी भास्कर को विदा करके शिवाजी एकदम कार्यव्यस्त हो गए थे। इस समय वे एक बड़ी ही कठिन जोखिमपूर्ण योजना मन ही मन बना चुके थे। उन्होंने रात भर जागकर भवानी की उपासना की। प्रभात में मन्त्रियों को बुलाकर मन्त्रणा की। उन्होंने कहा—"यदि मैं मार डाला जाऊं तो नेताजी पालकर पेशवा की हैसियत से राज्य का भार सम्हालेंगे। पुत्र शम्भाजी राज्य का उत्तराधिकारी रहेगा।" इस प्रकार सब प्रकार राज-व्यवस्था से निश्चिन्त हो उन्होंने अफ़जलखां से भेंट करने की तैयारियां कीं। सिर पर फौलाद का सिरस्त्राण पहना, ऊपर पगड़ी बांध ली, सारे शरीर पर जंजीरी कवच धारण किया, ऊपर सुनहरी काम का अंगरखा पहना, बांऐ हाथ की चारों उंगलियों में तीव्र व्याघ्र नख नाम का फौलादी अस्त्र और दाहिनी आस्तीन में बिछुआ छिपा लिया। इस प्रकार आत्मरक्षा और आक्रमण के लिए हर तरह तैयार होकर तथा सेना की गुप्त व्यवस्थाएं करके तथा अन्य संकेत सेनानायकों को देकर शिवाजी अपने विश्वस्त वीर साथियों सहित खान से भेंट करने को प्रतापगढ़ दुर्ग से चले। चलती बार उन्होंने माता जीजाबाई की

चरण धूलि ली और आशीर्वाद मांगा। उन्होंने कहा—"पुत्र, यह मत भूलना कि यह दैत्य मेरे पुत्र का घाती है, भाई शम्भाजी की मृत्यु का बदला लेना।" इस समय शिवाजी के अगल-बगल जीवाजी महला और शम्भूजी कावजी दो मराठे थे जिनकी जोड़ का तलवार का धनी उस काल महाराष्ट्र में न था।

२६

दुश्मन की मुलाकात

अभी तीसरा पहर था। सूरज की किरणें तिरछी हो गई थीं। अफजलखां ने एक हजार सिपाहियों सहित ठाठ-बाट से दरबार के लिए प्रस्थान किया। वह पालकी में सवार था। सैयद बन्दा पालकी के साथ-साथ चल रहा था। दूसरी ओर कृष्णजी भास्कर थे। जब पालकी शामियाने के सामने पहुंची तो कृष्णजी ने कहा—"यदि शिवाजी को धोखा देकर कब्जे में करना है, तो इतनी बड़ी फौज साथ ले जाना ठीक नहीं है। उसे यहीं छिपा देना चाहिए।"

अफजलखां ने घमण्ड में आकर स्वीकार कर लिया। सेना पीछे छोड़ दी गई, पर तैयार रहने का हुक्म दे दिया गया। उसे अपने बाहु-बल और आदमी के कद के बराबर लम्बी तलवार का बहुत भरोसा था। फिर सैयद बन्दा परछांई की भाँति नंगी तलवार लिए उसके पास था। शामियाना बड़े ठाठ से सजाया गया था। बड़े-बड़े कीमती कालीन और कारचोबी के मसनद वहां करीने से लगे थे। खान ने देख कर लापरवाही से कहा—"ताज्जुब की बात है कि एक मामूली देहाती जमींदार के पास इस कदर कीमती आशाइश का सामान कहां से आ गया।"

गोपीनाथ पन्त ने नम्रता से कहा—"हुजूर, यह सब सामान बहुत जल्द हुजूर की हमराह बीजापुर जायगा। मेरे मालिक ने हुजूर ही के लिए यह मुहय्या किया है।"

"लेकिन तुम्हारा वह गंवार मालिक कहां ? ?"

"हुक्म हो तो मैं आगे जाकर उन्हें हुजूर में ले आऊं।"

"जरूर जाओ।" कहकर खान ऊंची मसनद पर बैठ गया।

थोड़ी ही देर में शिवाजी अपने दोनों सेवकों सहित वहां जा पहुंचे। पर शिवाजी ने खान के पास सैयद बंदा को नंगी तलवार लिए खड़ा देखा तो वे वहीं ठिठक कर खड़े रह गए और कहला भेजा कि उस आदमी से मुझे बहुत खौफ लग रहा है। मेरी हिम्मत आगे बढ़ने की नहीं होती। खान को शिवाजी की दुबली-पतली बदसूरत-सी शक्ल और यह बुजदिली देखकर हंसी आ गई। उसने उन्हें बिना हथियार खाली हाथ देखकर कहा—"उससे कहो, बेखौफ चला आए।" लेकिन शिवाजी आगे नहीं बढ़े। तब खान ने सैयद को जरा दूर खड़ा कर दिया। शिवाजी ने मंच पर ऊपर चढ़कर सहमते हुए खान को सलाम किया। खान खड़ा हो गया और दोनों हाथ फैलाकर शिवाजी को गले लगाने को आगे बढ़ा।

शिवाजी का सिर मुश्किल से उसके कन्धों तक आया। खान ने शिवाजी की गर्दन अपने बाएं हाथ से दबा कर दाहिने से खंजर निकाल उनकी बगल में घोंप दिया। पलक मारते यह काम हो गया। शिवाजी की गर्दन इतने जोर से उसने दबोच रखी थी कि उनका दम घुटने लगा। खंजर जिरहबख्तर में लगकर खसक गया। दोनों पक्षों के वीरों के हाथ तलवार की मूठों पर गए। इसी समय खान जोर से चीख उठा। शिवाजी के बाएं हाथ के बघनखे ने खान का समूचा पेट चीर डाला था और उसकी आंतें बाहर निकल आई थीं। उसकी पकड़ भी ढीली पड़ गई। उसने तलवार निकालनी चाही, पर इसी समय शिवाजी ने उछल कर समूचा बिछुआ उसके कलेजे में घोंप दिया। खान जमीन पर गिर कर छटपटाने लगा और "मार डाला काफिर ने, पकड़ लो" चिल्लाने लगा। इसी समय सैयद की तलवार का करारा वार शिवाजी के सिर पर पड़ा।

वार से उनका फौलादी झिलमिल टोप कट गया और थोड़ी चोट भी आई। इसी समय जीवाजी महला ने उछलकर सैयद का तलवार वाला हाथ काट डाला। कटा हाथ तलवार सहित दूर जा गिरा। सैयद चीख कर जीवाजी पर झपटा। इसी बीच जीवाजी ने उसका सिर भुट्टा-सा उड़ा दिया। कृष्णजी भास्कर तलवार लेकर गज वेग से चिल्लाते हुए आगे बढ़े।

अब शिवाजी ने लपक कर सैयद की तलवार उठा ली और कहा—"जाओ, पिता की आज्ञा से ब्राह्मण वध नहीं करूँगा।" उधर खान को पालकी में डालकर पालकी वाले भाग चले। इस पर शम्भूजी कावजी ने तलवार के वार उनकी टांगों पर किए। पालकी वाले चीखते-चिल्लाते पालकी छोड़ भाग चले। शम्भूजी ने खान का सिर तत्काल काट कर शिवाजी के सम्मुख उपस्थित किया। इसी समय जीवाजी महला ने शंख फूंक दिया। शंख फूंकते ही इशारा पाकर प्रतापगढ़ से तोप गरज उठी। फिर क्या था। आसपास की झाड़ियों-जंगलों से निकल कर हजारों मावली दुश्मनों पर टूट पड़े। अफजलखाँ की सेना को असल बात का उस समय तक पता नहीं लगा, जबतक किले से तोप नहीं छूटी। अब वे निकलकर बढ़े तो गाजर-मूली की भाँति काट डाले गए।

अफजलखाँ मारा गया। उसके दो लड़के, एक मुसलमान सरदार, दो मराठा सरदार, ६० हाथी, ४ हजार घोड़े, १२०० ऊँट, बहुत-से कपड़े की गाँठें और १० लाख रुपया नकद शिवाजी के हाथ आया। शिवाजी विजय-वैजयन्ती फहराते, नगाड़े बजाते किले में लौटे। आगे-आगे भाले पर खान का कटा हुआ सिर था।

दूसरे दिन दरबार हुआ। उत्सव मनाए गए। खिलअतें बाँटी गईं। दुश्मन के सेनापति और सिपाहियों को राह खर्च देकर बिदा किया गया। शत्रु की औरतें और ब्राह्मण आदरपूर्वक बिदा हुए। वीर

मराठाओं को इनाम बाँटे गए। जो मारे गए, उनके परिवारों को पेन्शनें मिलीं। लूटे हुए हाथी-घोड़े आदि सेनापतियों में बाँटे गए।

दिग्दिगन्त में यह घटना वायु-वेग से फैल गई। मुगल बादशाह गाजी आलमगीर का कलेजा भी काँप गया।

२७

शिवाजी का रण-पाण्डित्य

अफजलखाँ के मारे जाने की खबर से बीजापुर में मातम छा गया। बड़ी साहिबा ने कई दिन तक खाना भी नहीं खाया। दरबार में शोक मनाया गया। छोटे-बड़े सभी आतंक से थर्रा उठे। इस घटना से कुछ दिन पूर्व ही बीजापुर का वजीर आजमखाँ मारा गया था, और उसी प्रकार उसका पुत्र खवासखाँ भी कत्ल किया गया था। यह एक प्रकार की परम्परा-सी पड़ गई और अब यह चर्चा होने लगी कि देखें अब क्या होने वाला है। शिवाजी के सम्बन्ध में भाँति-भाँति की चर्चाएँ होने लगीं और अब दक्षिण से उत्तर तक शिवाजी-ही-शिवाजी लोगों की जिह्वा पर खेलने लगे।

शिवाजी के विक्रम के साथ चातुर्य और साहस ने मिलकर हिन्दुओं की विग्रह-पद्धति में एक आमूल क्रान्ति करदी थी। अबतक केवल राजपूत ही मुसलमानों से टक्कर लेते थे। दूसरे यदि किसी ने सिर उठाया भी था तो उसे विद्रोह ही कहा जाता था। केवल राजपूतों के प्रतिरोध को युद्ध की संज्ञा दी जाती थी। राजपूत डटकर सम्मुख युद्ध करते थे। किन्तु उनमें संगठन-चातुर्य, कूटनीति और रण-कौशल नहीं था, न सेनापतित्व ही था। केवल शौर्य-ही-शौर्य था। वे जब लड़ते थे, हार कर पीछे लौटना अपमानजनक समझते थे। युद्धक्षेत्र में ही कट

मरते थे। विजय की भावना उनके मन में थी ही नहीं। जूझ मरने की भावना थी। शत्रुओं की अपेक्षा उनकी शक्ति भी बहुत कम थी। इसी से वे जब युद्ध को अग्रसर होते थे तो मरने की तैयारी करके, और बहुधा कट मरना तथा पराजय उनके पल्ले बँधती थी। तिल-तिल कर मरना ही उनका शौर्य था। मुगल-सैन्य के साथ रहकर भी उन्होंने नया युद्ध-कौशल नहीं सीखा। मुगलों ने उनकी अडिग भावना, कट मरने के संकल्प और उत्कट शौर्य का पूरा लाभ उठाया। उन्होंने यह नीति अपनाई कि किसी मुस्लिम सेनापति के साथ किसी राजपूत राजा को नत्थी रखते थे—जिससे उसे केवल कट मरने के लिए रणक्षेत्र में धकेल दिया जाता था, रण-कौशल मुगल-सेनापति के हाथों रहता था। यही कारण था कि मुगलों के लिए तो उन्होंने महासाम्राज्य जीता, पर अपने लिए सदैव हार ही पल्ले बांधी।

सच पूछा जाए तो महाभारत-संग्राम से लेकर मुगल-साम्राज्य के पतनकाल तक हिन्दू-रणनीति में सेनापतित्व का सर्वथा अभाव रहा। महाभारत-संग्राम में हिन्दुओं ने जो रणनीति अपनाई, वही अन्ततः मुगल साम्राज्य की समाप्ति तक चलती रही। उसका स्वरूप यह था कि सेनापति सबसे आगे आकर लड़ता था। जब तक वह कट न मरे, वही सबसे भारी जोखिम उठाता था। इस प्रकार वह युद्ध का संचालन नहीं करता था, स्वयं युद्ध करता था।

परन्तु हिन्दू योद्धाओं के इतिहास में शिवाजी ने ही सबसे प्रथम रण-चातुर्य प्रकट किया। वे कट मरने या युद्ध-जय के लिए नहीं लड़ते थे, उनका उद्देश्य राज्यवर्धन था। युद्ध उसका एक साधन था। वे युक्ति, शौर्य, साहस, दूरदर्शिता और रण-पांडित्य सभी का उपयोग करते थे। वे युद्ध में कम-से-कम हानि उठाकर अधिक-से-अधिक लाभ उठाते थे। जूझ मरने की उनमें भावना थी ही नहीं, यद्यपि वे प्राण-संकट तक का दुस्साहस करते थे। इस प्रकार हिन्दुओं में शिवाजी,

महाभारत-संग्राम के बाद, पहले ही सेनापति थे। उस काल में उनके सेनापतित्व के चातुर्य का दो और वीर पुरुषों ने अनुसरण किया था—एक मेवाड़ के राणा राजा राजसिंह, दूसरे बुन्देले छत्रसाल। मुगल तख्त का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इन तीनों ही विलक्षण पंडितों ने आगे एक साथ ही औरङ्गजेब से टक्कर ली और आखिरकार मुगल तख्त की पाताल तक जमी हुई नींव को उखाड़ फेंका।

२८

पन्हाला दुर्ग का घेरा

दस नवम्बर, १६६६ को अफजलखाँ मारा गया। अफजलखाँ के मरने और उसकी सेना के संहार द्वारा प्राप्त विजय से उन्मत्त मराठे अब दक्षिणी कोंकण और कोल्हापुर के जिलों में जा घुसे। शिवाजी ने उन्हें बीजापुर प्रान्त को लूटने और नष्ट-भ्रष्ट करने की खुली आज्ञा दे दी। मराठों ने पन्हाला के प्रसिद्ध दुर्ग पर कब्जा कर लिया तथा बीजापुरी सेना को खदेड़ते हुए और दुर्ग-पर-दुर्ग अधिकार में करते हुए शिवाजी की वह सेना बीजापुर की ओर बढ़ने लगी। उसने बीजापुर के प्रसिद्ध सेनापति रुस्तमे जमान को, जो कोल्हापुर के बचाव के लिए आया था, पामाल करके कृष्णा नदी के उस पार धकेल दिया। अब वह राजापुर पहुँची और वहाँ से भेंट-कर लेकर विजय-पर-विजय प्राप्त करती हुई, नगरों व ग्रामों से असंख्य धन लूट और भेंट में वसूल करती हुई बीजापुर की सीमाओं तक पहुँच गई। इस समय बीजापुर में अफजलखाँ का मातम छाया हुआ था। जब वहाँ शिवाजी के धँसे चले आने की सूचना पहुँची तो अली आदिलशाह और बड़ी साहिबा ने हब्शी गुलाम सिद्दी जौहर को, जो सलाबतखाँ के नाम से प्रसिद्ध था, १५००० सवार देकर रवाना किया। उसके साथ अफजलखां का पुत्र फजलखाँ भी था जो अपने बाप का बदला चुकाने के लिए खार खाए बैठा था।

जब शिवाजी को बीजापुर की इस कार्यवाही का पता लगा तो उन्होंने जहाँ-तहाँ छुटपुट लड़ाई करके और तेजी से लौट कर पन्हाला दुर्ग में आश्रय लिया। इस समय उनकी सारी सेना बिखरी हुई थी तथा पन्हाला दुर्ग में बहुत कम सेना थी। सिद्दी जौहर के १५००० सवारों ने पन्हाला के क़िले को घेर लिया और पास की पहाड़ी पर मोर्चा जमा कर तोपों से आग उगलना आरम्भ कर दिया।

गरमी के भीषण दिन थे और पहाड़ियाँ लोहे की तरह तप कर लाल हो रही थीं। किले में रसद और पानी की भी बहुत कमी थी। इससे दिन-पर-दिन शिवाजी की कठिनाइयाँ बढ़ती जाती थीं।

इस समय रघुनाथ पन्त फतहखां से लोहा ले रहा था, जो कोंकण में शिवाजी की स्वायत्त भूमि पर हमले कर रहा था। पुरन्दर, संगर व प्रतापगढ़ और उसके आसपास की भूमि की रक्षा मोरो पन्त के सुपुर्द थी।

सिद्दी जौहर की सेना बे-रोकटोक पन्हाला दुर्ग के समीप तक आ पहुँची थी और उसने दुर्ग को घेर लिया था। इस सेना को यहां तक आने में मराठों ने बाधा नहीं पहुँचाई थी, किन्तु ज्यों ही बीजापुरी सेना ने मोर्चे बना दिए, नेताजी पालकर ने आसपास के प्रान्तों को उजाड़ना आरम्भ कर दिया। इससे शत्रु की सेना को रसद की सामग्री का अकाल पड़ गया। किन्तु सिद्दी जौहर मोर्चे पर डटा रहा।

किले को घेरे पांच महीने हो रहे थे। शिवाजी के पास बहुत कम सेना और रसद थी। फिर भी उन्होंने वीरतापूर्वक पांच महीने तक बीजापुरी सेना से पन्हाला में कड़ा मोर्चा लिया। अब किले में न एक बूंद पानी था, न अन्न। जो सैनिक बच रहे थे, उनमें बहुत से रोगी थे। मरे हुए घोड़ों और सैनिकों की लाशों के सड़ने से किले का वातावरण दूषित हो गया था। इस समय शिवाजी के पास उनका स्वामिभक्त सरदार बाजीप्रभु और उसके थोड़े से

सैनिक थे। बाजीप्रभु ने शिवाजी को वहां से निकल जाने का परामर्श दिया, पर शिवाजी संकट में साथियों को छोड़ कर जाने में राजी नहीं होते थे।

अन्त में बाजीप्रभु ने एक साहसपूर्ण योजना बनाई। उसने सिद्दी जौहर के पास संधि-प्रस्ताव भेजा और युद्ध बन्द करने की प्रार्थना की। जिससे सिद्दी ने प्रतिबन्ध ढीले कर दिए। युद्ध बन्द हो गया। दूतों का अभी आना-जाना चल ही रहा था कि अवसर पाकर शिवाजी दुर्ग से भाग निकले।

भयानक अंधेरी रात थी। आकाश में बादल घिर रहे थे। हवा के झोंके पहाड़ियों से टकरा रहे थे। इसी समय अंधेरी रात में मुट्ठी भर वीर मराठों ने नङ्गी तलवारें लेकर किले का फाटक खोल दिया और द्रुत गति से पलायन किया। बीजापुरी सैनिक मार-मार करते दौड़े, परन्तु वीरवर बाजीप्रभु तथा सैनिकों ने गजपुर की घाटी में उलट कर पीछा करने वालों को अपनी छातियों की दीवारों से रोक दिया। वे एक-एक कर अपनी जगह कट मरे और उनकी लोथें उनके द्वारा मारे गए शत्रुओं की लोथों पर गिर पड़ीं। परन्तु शिवाजी सकुशल बचकर वहाँ से सत्ताईस मील दूर विशालगढ़ जा पहुँचे। इस समय उनके साथ अकेला उनका जीवनसाथी घोड़ा और विजयिनी तलवार थी। बाकी सब शूर उसी मुहिम में खेत रह गए थे।

२६

पिता शत्रु का संधिदूत

शिवाजी के इस प्रकार पन्हाला दुर्ग से बच निकलने से आदिलशाह द्वितीय बहुत क्रुद्ध हुआ। उधर अब शिवाजी अत्यन्त उग्रता से बीजापुर राज्य का विध्वंस कर रहे थे। इससे बौखलाकर आदिलशाह

ने सिद्दी जौहर को कैद करने बहलोलखां को भेजा और शिवाजी से निबटने को स्वयं एक बड़ी भारी सेना लेकर निकला। उसने पन्हाला और दूसरे दुर्ग अधिकृत कर लिए, परन्तु सिद्दी जौहर शिवाजी से शह पाकर कर्नाटक भाग गया और वहां उसने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। इसी समय बरसात शुरू हो गई। अतः उसे शिवाजी को परास्त करने का विचार छोड़ तेजी से बीजापुर लौटना पड़ा। अब उसने निरुपाय हो शाहजी को ही अपना संधिदूत बनाकर शिवाजी के पास भेजा।

बड़ा विचित्र संयोग था। पुत्र के पास पिता शत्रु का संधिदूत बनकर आया था। पिता-पुत्र की यह प्रथम भेंट थी। आज तक शाहजी ने पुत्र का मुख नहीं देखा था।

जंजुरी की छावनी में शिवाजी ने पिता का स्वागत किया। शाहजी के साथ उनकी दूसरी पत्नी तुकोबाई और उनका पुत्र व्यंकोजी भी था। सब लोग एक तम्बू में घी से भरे कांसे के एक बहुत बड़े थाल के इर्द-गिर्द बैठे थे। सभी के मुख पर वस्त्र का पर्दा पड़ा था। पहले सब ने एक-दूसरे के मुख की परछाईं घृत में देखी, फिर शिवाजी ने उठकर पिता और विमाता के चरण छुए। तब व्यंकोजी और तुकोबाई ने उठकर जीजाबाई के चरणों में प्रणाम किया।

शाहजी ने कहा—"आज मेरा बड़ा भाग्य है कि १९ बरस बाद पुत्र का मुख और साध्वी जीजाबाई का मुख देख रहा हूं।"

"मैं आपका अपराधी हूं। मैंने आपकी आज्ञाओं का बारंबार उल्लंघन किया। बीजापुर से युद्ध करता रहा और आपको प्राण-संकट का सामना करना पड़ा। अब मैं बद्धांजलि आपकी शरण हूं।" शिवाजी ने पिता के चरणों में सिर झुका दिया।

शाहजी ने उन्हें उठाकर छाती से लगाकर कहा—"पुत्र, तुमने हमारे कुल में नया शाका चलाया, तुम-सा पुत्र पाकर मैं इस लोक और

परलोक में धन्य हुआ। मैंने मानता मानी थी कि जब मेरा पुत्र छत्रपति बनेगा, तो मैं तुलजापुर की भवानी पर एक लाख की स्वर्ण मूर्तियां चढ़ाऊँगा। वह मूर्तियाँ चढ़ाए चला आ रहा हूँ। आज से तू छत्रपति होकर प्रसिद्ध हो।"

इतना कहकर शाहजी स्वयं शिवाजी के सिर पर छत्र लेकर सेवक की भांति खड़े हो गए। शिवाजी ने फिर पिता के चरणों में सिर नवाया। शाहजी ने कहा—"मैंने तुम्हें रोकथाम के जो आदेश दिए थे, वे ऊपरी मन से ही थे। तुम्हारे प्रत्येक उत्थान से मैं खुश था। परन्तु बहुत बातों को सोचकर मैं तुमसे अलग-अलग ही रहा। इससे तुम्हें लाभ ही हुआ। शत्रु की सब गतिविधि पर मैंने अंकुश रखा।"

"पिता, आपने मेरा सब संकोच दूर कर दिया। अब आज्ञा कीजिए, क्या करूँ?"

"पुत्र, मैं आदिलशाह का दूत बनकर सन्धि-प्रस्ताव लेकर आया हूँ। आदिलशाह ने मुझे पूर्ण स्वतन्त्र राजा मान लिया है और अब तक जो राज्य-भूमि, किले तूने जीते हैं, उन पर तेरा अधिकार स्वीकार किया है तथा तेरे ही अनुकूल राज्य सीमाएँ मान ली हैं। अब यही बात है कि जब तक मैं हूँ, बीजापुर से विग्रह न कर। बीजापुर राज्य को मित्र-राज्य समझ।"

शिवाजी ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। संधिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। फिर कहा—"एक निवेदन मेरा भी है।"

"कह पुत्र।"

"घोरपाण्डे ने आपको धोखे से बन्दी बनाया था, उसे मैंने मधोल पर चढ़ाई करके सपरिवार मार डाला है और उसकी ३,००० सेना का विध्वंस भी कर दिया है। उसकी सब जागीर और खजाना, मैं आपको अर्पण करता हूँ, स्वीकार कीजिए। सावंतों के युद्ध में पुर्तगाल वालों ने गोला-बारूद से उनकी सहायता की थी, अतः मैंने पंचमहाल पर चढ़ाई

करके उस पर अधिकार कर लिया है तथा पचास हजार हुन दण्ड भी लिया—यह भी आप ही के चरणों में अर्पण है। स्वीकार कीजिए।"

"पुत्र, तुमने मेरा कुल उज्ज्वल किया।" उन्होंने पुत्र को फिर आलिंगन किया और सभा विसर्जित हुई। जीजाबाई ने १९ वर्ष बाद पति दर्शन किए थे—उसके नेत्रों से आंसू बह रहे थे।

३०

शाइस्ताखाँ से टक्कर

औरङ्गजेब को दक्षिण से सूचना मिली—'बीजापुर में एक आदमी ने विद्रोह करके कई किलों और बन्दरगाहों पर, जो बीजापुर दरबार के आधीन थे, कब्जा कर लिया है। उसका नाम शिवाजी है। वह चतुर और साहसी है। उसे मरने-जीने की परवाह नहीं है। प्रसिद्ध है कि उसमें कुछ गैबी हवाई ताकत है। उसने अफजलखाँ को मार डाला है। वह बीजापुर के शाह से भी बढ़ गया है और अब शाही इलाकों में लूटमार करके बदअमनी फैला रहा है।'

औरंगजेब को निरन्तर फिर ऐसी ही सूचनाएँ मिलती रहीं। तब शिवाजी की तूफानी हलचलों से घबराकर औरंगजेब ने अपने मामू शाइस्ताखां को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। दक्षिण आते ही उसने बीजापुर शाह से मिलकर यह आयोजन किया कि वह स्वयं उत्तर की ओर से और बीजापुरी सेना दक्षिणकी ओर से शिवाजी पर आक्रमण करे। २५ फरवरी, १६६० को एक बड़ी सेना के साथ वह अहमदनगर से रवाना हुआ और ९ मई को पूना पहुँचा। इसके बाद पूना से चलकर वह चाकण के किले में गया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु इस पहली ही मुठभेड़ में उसे बहुत हानि उठानी पड़ी। वह पूना लौट गया। वर्षा ऋतु उसने वहीं व्यतीत की। वर्षा की समाप्ति पर

उसने उत्तर कोंकण पर एक सेना भेजी जहां एक छोटी-सी मुगल-सेना पहले ही से पड़ी हुई थी। परन्तु उसकी यह चाल शिवाजी से छिपी न रही। शिवाजी ने भी तेजी से आगे बढ़कर उमरखिण्ड के जङ्गलों में उसे इस प्रकार घेर लिया कि मुगल-सेना को आगे वढ़ने और पीछे लौटने के सब रास्ते बन्द हो गए। पशु और सैनिक प्यास से तड़प-तड़प कर मरने लगे। निरुपाय हो अपना सब असबाब, रुपया-पैसा और हथियार शिवाजी को सौंपकर मुगलों ने अपनी जान बचाई। इसके बाद शाइस्ताखां की सेना के साथ छुटपुट कार्यवाही होती ही रही।

शाइस्ताखां बड़ा सावधान राजपुरुष और मंजा हुआ सिपाही था। उसने बड़ी चतुराई से पूना में अपने निवास का प्रबन्ध किया था। अजफलखाँ की दुर्गति से वह बहुत भयभीत था। उसने अपनी नौकरी में जितने घुड़सवार मरहठे थे, सबको बर्खास्त कर दिया तथा शहर के पहरेदारों को कड़ी आज्ञा दे दी कि बिना परवाना किसी हिन्दू को शहर में न घुसने दिया जाय।

उसने लाल महल में अपना डेरा डाला जो शिवाजी का बाल्य-काल का भवन था। शाइस्ताखाँ के साथ उसका हरम भी था। महल के चारों ओर उसके अंगरक्षकों-नौकरों के रहने के स्थान, नौबतखाना, दफ्तर आदि थे। दक्षिण की ओर जो सड़क सिंहगढ़ को जाती थी, उसके दूसरे छोर पर राठौर महाराज जसवन्तसिंह अपने १०,००० राठौर सवारों के साथ मुकीम थे। इस सुरक्षा व्यवस्था के होते हुए संभव न था कि शाइस्ताखां के ऊपर कोई आकस्मिक आक्रमण किया जा सके। परन्तु शिवाजी ने बड़ी ही सूझ-बूझ से शाइस्ताखां पर आक्रमण करने की योजना बनाई। उन्होंने नेताजी पालकर और पेशवा मोरो पन्त के आधीन एक-एक हजार मावले पैदल और घुड़सवारों की दो सहायक टुकड़ियाँ देकर उन्हें मुगल पड़ाव की बाहरी सीमा के दोनों ओर एक-एक मील की दूरी पर जा डटने का आदेश दिया और चार सौ चुने हुए

सैनिकों की एक टुकड़ी सेनापति चिमनाजी बापूजी के नेतृत्व में पूना की ओर रवाना की। मुगल पहरेदारों के पूछने पर इस टुकड़ी ने अपने को शाही सेना के दक्षिणी सैनिक बताया और कहा कि वह उनको दी गई चौकियों को सम्हालने जा रही है। सन्देह की निवृत्ति के लिए उन्होंने कुछ घण्टे वहीं सुस्ता लेने के बाद वहाँ से नगर की ओर कूच किया। यह घटना रविवार ५ अप्रेल, १६६३ के दिन हुई। सूर्यास्त के समय एक बारात ने पूना में बाजा बजाते हुए प्रवेश किया। बारात को भीतर जाने का परवाना था जिनमें बाजे वाले, मशालची, बाराती, दूल्हा, सब मिलाकर कोई १००-१२५ आदमी थे। शिवाजी और उनके २६ आदमी घूस देकर मशालची और बाजे वालों में मिल गए। किसी को भी इन पर कोई सन्देह नहीं हुआ। उस दिन रमजान की छठी तारीख थी। दिन भर के उपवास के बाद रात को ठूंस-ठूंस कर भरपेट माल-मलीदा खाकर सारे नौकर-चाकर और सिपाही गहरी नींद का आनन्द ले रहे थे। कुछ रसोइए आग जलाकर सूर्योदय से पहले ही सहरी तैयार करने की खटपट में थे। शिवाजी का बाल्यकाल और यौवन के आरम्भिक दिन इसी महल में व्यतीत हुए थे। वे महल के कोने-कोने से परिचित थे। पूना के गली-कूचे, प्रकट और गुप्त रास्ते भी वे भलीभाँति जानते थे। शिवाजी चिमनाजी बापू को साथ लेकर गुप्त द्वार से महल के भीतर आँगन में जा पहुँचे। सामने ही बाहरी रसोईघर था और उसके बाद अन्तःपुर। दोनों के बीच एक दीवार थी जिसमें एक पुराना दरवाजा था जो अन्तःपुर की आड़ को पूरा करने के लिए ईंट और मिट्टी से पूरा कर दिया गया था। मराठों ने बड़ी आसानी से ईंटें निकालकर उस दरवाजे को खोल लिया। जो लोग रसोई में खाने-पीने की खटपट में लगे थे, वे अचानक इतने आदमियों को देख भौंचक्के रह गए, परन्तु उन्हें अपने मुंह से एक शब्द तक निकालने का अवसर न मिला। उन्हें काट डाला गया और तब शिवाजी चिमनाजी बापू को लेकर अन्तःपुर में जा घुसे।

उनके पीछे थे उनके ४०० मावला वीर और उनकी नङ्गी तलवारें। शिवाजी एकदम खान के शयनागार में जा धमके। औरतें भयभीत होकर चीख पड़ीं। हड़बड़ा कर शाइस्ताखां उठा और वह इतना घबरा गया कि दुमहले से नीचे कूद पड़ा। शिवाजी उसकी ओर झपटे किन्तु तलवार के आघात से उसका एक अंगूठा ही कटा। इसी समय किसी ने सब दीपक बुझा दिए। अंधेरे में मराठे मारकाट करते रहे किन्तु दो दासियों ने जान पर खेल कर शाइस्ताखाँ को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। इसी समय अन्तःपुर के फाटक पर—महल के मुख्य पहरेदारों पर, हमला कर दिया और उन्हें काट डाला। फिर वे नौबतखाने में पहुँचे और नौबत बजाने की आज्ञा दी। नौबत और नगाड़ों की इस तुमुल ध्वनि में अन्तःपुर का करुण क्रन्दन और पहरेदारों की चीख-चिल्लाहट डूब गई और मराठों ने अपनी हुंकारों से ऐसा आतंक उत्पन्न किया कि सैनिक और असैनिक प्राण लेकर भागने लगे। अब इस आशंका से कि कदाचित् और सेना आकर उन्हें घेर न ले, शिवाजी वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गए। न किसी ने उनका पीछा किया, न उन्हें कोई हानि पहुँची। इस मुहिम में कुल ६ मराठे मरे, ४० घायल हुए। उधर मराठों ने शाइस्ताखाँ के एक पुत्र, एक सेनापति, ४० नौकर, उसकी ६ पत्नियों और दासियों को मार डाला तथा दो पुत्रों, आठ स्त्रियों और शाइस्ताखाँ को उन्होंने घायल किया। शाइस्ताखाँ इस घटना से ऐसा भयभीत हुआ कि वह दक्षिण से सीधा दिल्ली भाग चला और शिवाजी की धाक और स्थिति इतनी बढ़ गई कि मुसलमानी सेना में लोग उसे शैतान का अवतार मानने लगे और यह समझा जाने लगा कि उससे बचने के लिए न तो कोई सुरक्षित जगह है और न कोई ऐसा काम है, जिसे शिवाजी न पहुँच सकें।

बादशाह इस समय काश्मीर को रवाना हो रहा था। उसने जब इस भयानक घटना का समाचार सुना तो अपनी दाढ़ी नोंच ली

और शाइस्ताखाँ को हुक्म दिया कि वह दिल्ली में मुंह न दिखाए और सीधा बङ्गाल चला जाए। उन दिनों बङ्गाल की आबोहवा बहुत खराब थी। वहां मलेरिया और हैजा का प्रकोप बारहों मास रहता था जिसमें प्रति वर्ष लाखों मनुष्य मर जाते थे। इसके अतिरिक्त अराकान के लुटेरों ने वहां भारी आतंक फैला रखा था। मुगलों का कोई सरदार बङ्गाल जाने को राजी न होता था। बादशाह जिस सरदार को दण्ड देना चाहता था, उसे ही वहां भेजता था।

दक्षिण की सूबेदारी शाहजादा मुअज्जम को दे दी गई। शाइस्ताखां दुःख और शर्म से अधमरा-सा जब औरङ्गाबाद के लिए कूच कर रहा था तो महाराज जसवन्तसिंह सहानुभूति प्रकट करने पहुंचे तो उसने खीझ कर कहा—"मैं तो समझा था कि दुश्मन के हाथों आप मर चुके हैं।"

३१

सूरत की लूट

जिस समय औरङ्गाबाद में सूबेदारों की यह अदला-बदली हो रही थी, शिवाजी ने अपने दो-तीन हजार चुने हुए मराठे योद्धाओं को लेकर सूरत की ओर प्रस्थान किया। इस समय तक नगर की रक्षा के लिए न तो कोई शहरपनाह थी, न सेना का ही विशेष प्रबन्ध वहाँ था। जो थोड़ी-बहुत सेना थी, वह किले में रहती थी। सूरत एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह और मुगल राज्य का धनधान्य से भरपूर नगर था। वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भी केन्द्र था। योरोपियन और अन्य विदेशी व्यापारियों की वहाँ बड़ी-बड़ी कोठियाँ थीं। इस नगर की केवल चुङ्गी की आमदनी बारह लाख रुपयों की थी।

जनवरी के आरम्भिक दिन थे। सर्दी काफी थी। अभी सूर्योदय

हुआ था, लोग उठकर प्रातः-कृत्य कररहे थे—कोई दतून कर रहा था, कोई स्नान की चिन्ता में था। दूकानदारों ने दूकानें अभी खोली ही थीं कि अचानक यह अफवाह फैल गई कि मराठे नगर लूटने को धँसे चले आ रहे हैं और वे गण्डावी तक पहुँच चुके हैं। गण्डावी सूरत से कोई २८ मील के अन्तर पर था। नगर में घबराहट फैल गई। लोगों में आतंक छा गया। किसी ने विश्वास किया, किसी ने नहीं। कुछ लोग स्त्री-बच्चों को लेकर नगर से भाग गए। कुछ अपनी जान बचाने को नदी पार कर नदी के दूसरी ओर चले गए। कुछ धनी लोगों ने किलेदार को रिश्वतें दे देकर किले में शरण ली। परन्तु वह दिन योंही सकुशल बीत गया। लोग कुछ निश्चिन्त हुए।

परन्तु दूसरे दिन पहर दिन चढ़े शिवाजी ने सूरत के पूर्वी ओर के बुरहानपुरी दरवाजे से बाहर कोई दो फर्लाङ्ग की दूरी पर एक बाग में अपना डेरा खड़ा किया। शहर का कोतवाल इनायतखाँ को उन्होंने कहला भेजा कि मैं बादशाह से मिलने आगरे जा रहा हूँ। मेरा इरादा शहर के भीतर जाने का नहीं है। मैं बाहर ही बाहर जाऊँगा। परन्तु मराठे दूसरे दिन सूर्योदय होते ही नगर में घुस पड़े और घरों को लूट-लूट कर उनमें आग लगाने लगे। चारों ओर कुहराम मच गया। नगर कोतवाल इनायतखाँ नगर को अरक्षित छोड़कर किले में जा छिपा। लगातार चार दिन तक यह लूटमार और विध्वंस का काम चलता रहा। प्रतिदिन सैकड़ों घर लूटपाट कर आग की भेंट किए जाने लगे। नगर का लगभग दो-तिहाई भाग सर्वथा नष्ट हो गया।

डच फैक्टरी के पास वहरजी बोहरे का विशाल महल था। वहरजी उस काल संसार के सबसे धनवान पुरुष थे। उनकी जायदाद अस्सी लाख रुपयों की बताई जाती थी। वहरजी के महल को मराठों ने तीन दिन तक जी भरकर लूटा। वहाँ के फर्श तक खोद डाले और अन्त में उसमें आग लगादी।

अंग्रेज़ों की फैक्टरी के पास हाजी सैय्यदबेग नामक एक और धनी व्यापारी की गगनचुम्बी अट्टालिका थी। उसके बड़े-बड़े मालगोदाम भी थे जिनकी कतारें दूर तक चली गई थीं। अपनी इस सारी सम्पत्ति को अरक्षित छोड़कर वह व्यापारी भाग कर किले में छिप गया। मराठे घरों में, फैक्टरियों में, गोदामों में घुस-घुस कर वहाँ के दरवाज़ों और तिजो-रियों को तोड़-तोड़ कर नकद रुपया, कपड़े और अन्य ढेर सारी सामग्री उठा-उठाकर निरन्तर चार दिनों तक लाते रहे। केवल अंग्रेज़ों ने इन लुटेरे मराठों पर प्रत्याक्रमण किया। सूरत के डरपोक उत्पादकों ने सन्धि-चर्चा के बहाने अपने एक अनुचर को शिवाजी के पास भेज कर उन्हें मार डालने का षड्यन्त्र रचा। परन्तु वह अनुचर तुरन्त मार डाला गया। इस प्रकार समृद्ध सूरत को चार दिन तक निश्शंक लूटपाट कर जब शिवाजी ने सुना कि नगर-रक्षा के लिए सेना आ रही है—वे वहाँ से चल पड़े। कुल मिलाकर एक करोड़ रुपया सूरत की लूट में उनके हाथ लगा।

परन्तु लौट कर उन्होंने सुना कि शाहजी का स्वर्गवास होगया है। शिवाजी के यश ने यद्यपि शाहजी के यश को ढक दिया था, परन्तु शाहजी वास्तव में असाधारण व्यक्ति थे। शाहजी से पहले दक्षिण में हिन्दू रईस मुसलमान शासकों के सहायक समझे जाते थे। दक्षिण में उनकी कोई स्वाधीन-सत्ता नहीं थी। बीजापुर या गोलकुण्डा की शाहियों में यदि किसी हिन्दू रईस को पाँचहज़ारी का मनसब मिल जाता था तो उसका जीवन धन्य माना जाता था। पर शाहजी ने एक नई शान पैदा की थी। वे बड़े-से-बड़े मुसलमान सरदार से टक्कर लेने लगे थे। शाह को गद्दी पर बैठाने और उतारने वालों में उनका नाम आगया था। वास्तव में वे दक्षिण के भाग्य-निर्माता बन गए थे। हकीकत यह थी कि शाहजी ने ही शिवाजी के लिए राजनैतिक नेतृत्व करके उनके लिए स्वाधीनता का मार्ग साफ किया था।

शाहजी के मरने का दुख शिवाजी और जीजाबाई को भी बहुत हुआ। यद्यपि उन्होंने इन दोनों माता-पुत्र को त्याग दिया था, फिर भी जीजाबाई सती होने को तैयार हो गईं। पर शिवाजी ने उन्हें समझा-बुझाकर रोक दिया। मल्लूजी को अहमदनगर से राजा की उपाधि मिली थी। शाहजी के मरने पर वह उपाधि शिवाजी ने ग्रहण की और रायगढ़ में एक टकसाल स्थापित की, जहाँ राजा शिवाजी के नाम के सिक्के ढाले जाने लगे।

३२

मिर्जा राजा जयसिंह

शाइस्ताखाँ की हार ने ही औरङ्गजेब को बहुत क्षुब्ध कर दिया था। अब सूरत की इस लूट ने उसे बौखला दिया। परन्तु इसी समय आगरे में शाहजहाँ की मृत्यु होगई और बहुत-सा समय उसके मातम में बीत गया। इस समय दक्खिन का नया सूबेदार शाहजादा मुअज्जम औरङ्गाबाद में पड़ा हुआ शिकार और आमोद-प्रमोद में बेफिक्री से अपने दिन काट रहा था। शाइस्ताखाँ के दक्षिण से जाने के बाद अब उसे एक वर्ष बीत रहा था, फिर भी दक्षिण में आकर उसने कोई मार्के का काम नहीं किया था। सूरत की लूट जैसी जबरदस्त घटना हो जाने पर भी वह कान में तेल डाले पड़ा रहा। औरङ्गजेब ने अब सलाह-मशविरा करके अपने सारे हिन्दू और मुसलमान सेनापतियों में सर्वश्रेष्ठ सेनापति महाराज जयसिंह कछवाहा को और अपने अनुभवी और प्रसिद्ध सेनापति दिलेरखाँ को शिवाजी को कुचल डालने के लिए रवाना किया।

जयसिंह एक मँजा हुआ सिपाही और दूरदर्शी सेनापति था। उसने मध्य एशिया में स्थित बल्ख से लेकर सुदूर दक्षिण में बीजापुर तक और पश्चिम में कन्धार से लेकर पूर्व में मुंगेर तक साम्राज्य के हर

भाग में युद्ध किया था। शाहजहां के लम्बे शासनकाल में कदाचित् ही कोई ऐसा वर्ष बीता होगा, जब इस राजपूत योद्धा ने किसी बड़ी चढ़ाई में अग्रभाग न लिया हो। वह प्रसिद्ध विजेता था। इसके अतिरिक्त वह जैसा विलक्षण व सफल योद्धा और सेनापति था, वैसा ही था गूढ़ कूटनीतिज्ञ राजपुरुष भी। बादशाह शाहजहां और औरङ्गजेब भी कठिन समय में सदा उसका मुंह ताकते थे। वह बड़ा भारी राजनीतिज्ञ, व्यवहार-कुशल और धैर्यवान पुरुष था। मुगल दरबार के उसने बड़े ऊँचे-नीचे दिन देखे थे, और मुगलों के दरबारी शिष्टाचार का वह पूर्ण पारङ्गत था। राजस्थानी भाषा और उर्दू के अतिरिक्त संस्कृत, तुर्की और फारसी भाषाओं का भी उसे पूरा ज्ञान था। इन सब दुर्लभ और असाधारण गुणों के कारण वह दिल्ली के दरबार और शाही सेना में सर्वप्रिय और आदरणीय माना जाता था, जहाँ अफगान, तुर्क, राजपूत और हिन्दुस्तानी लोगों की मिली-जुली शक्तियाँ मुगलों के दूज के चाँद से अंकित शाही झण्डे के नीचे संगठित थीं। प्रायः राजपूत जोशीले, असावधान, साहसिक, नीतिरहित और अव्यवहारिक हुआ करते हैं, परन्तु राजा जयसिंह के व्यक्तित्व में अद्भुत दूरदर्शिता, राजनैतिक धूर्तता, बातचीत में मिठास, और विपत्काल में सूझ-बूझ अपवाद रूप में थी।

जयसिंह बड़ी तेजी से चलकर तावड़तोड़ दक्षिण में आ धमका। उसने सबसे पहले बीजापुर के सुलतान की आशाओं का ठीक-ठीक अध्ययन किया और आदिलशाह को आशा दिलाई कि यदि आदिलशाह मुगलों से मित्रता का व्यवहार करे, और यह प्रमाणित कर दे कि शिवाजी के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, तो औरङ्गजेब उस पर प्रसन्न हो जाएगा और बीजापुर से वसूल होने वाली टांके की रकम में काफी कमी करवा देगा। बीजापुर दरबार को सहमत करके उसने बीजापुर के अन्य सारे शत्रुओं को भी अपने साथ मिला लिया और सब ओर से एक साथ ही शिवाजी पर आक्रमण करने का आयोजन किया।

३३

पुरन्दर की चढ़ाई

३१ मार्च को वह आगे बढ़कर पुरन्दर की ओर चला और पुरन्दर से चार मील दूर पुरन्दर और सासवड़ के बीच अपना पड़ाव डाला और पुरन्दर के किले को घेर लिया। सासवड़ से ६ मील दक्षिण में पुरन्दर का विशाल पर्वत सीधा खड़ा था। उसकी सबसे ऊँची चोटी आस-पास के समतल मैदान से कोई २५०० फुट से भी अधिक ऊँची तथा कुल मिलाकर समुद्र की सतह से ४५६४ फुट ऊंची थी। वास्तव में यह एक नैसर्गिक दुहरा किला था। इसके पूर्व में बिलकुल सटी हुई एक पहाड़ी पर वज्रगढ़ नाम का एक दूसरा सुदृढ़ किला था। पुरन्दर का किला जिस पहाड़ी पर बना हुआ था, वह चारों ओर से बहुत ही ऊंची चट्टानों से निर्मित थी। इससे कोई ३०० फुट नीचे एक और परकोटा था, जो माची कहलाता था। पुरन्दर के ऊपरी किले की उत्तर-पूर्वी सीमा खड़कला बुर्ज के तल से आरम्भ होकर भैरव-खण्ड नामक एक ऊंची पहाड़ी पूर्व में एक संकरी पर्वत-श्रेणी के रूप में कोई एक मील तक चली गई थी, जिसने दूसरे सिरे पर समुद्र से ३६१८ फुट ऊंचे एक छोटे से पठार का रूप धारण कर लिया था। यहीं पर वज्रगढ़ नाम का किला था। माची के उत्तरी भाग में सैनिकों के रहने के स्थान थे और वज्रगढ़ का किला माची के बिलकुल ऊपर था।

जयसिंह ने एक अनुभवी सेनानायक की भाँति पहले वज्रगढ़ पर आक्रमण किया और लगातार गोलाबारी करके सामने की बुर्ज के नीचे की दीवार को तोड़ डाला और बुर्ज पर धावा करके मराठों को किले के पीछे की ओर धकेल दिया और ऐसी जोर की गोलाबारी की कि

दूसरे दिन सूर्यास्त होते-होते किले पर उसका अधिकार हो गया। अब दिलेरखाँ को पुरन्दर पर आक्रमण करने की आज्ञा देकर जयसिंह ने सैनिकों के दल मराठा प्रदेश में लूटमार के लिए रवाना किए।

दिलेरखाँ वज्रगढ़ को पुरन्दर से जोड़ने वाली पर्वत-श्रेणी के सहारे-सहारे पुरन्दर की ओर बढ़ा, और माची को जा घेरा। तथा किले के उत्तर-पूर्वी सिरे पर खड़कला बुर्ज की ओर उसने खाइयाँ खुदवानी आरम्भ कीं। निरन्तर घमासान लड़ाई के बाद मुगलों ने माची के पाँच बुर्ज अधिकृत कर लिए। अब पुरन्दर का किला उसके सामने था।

३४
सुलह की बातचीत

पुरन्दर का किलेदार मुरारजी बाजीप्रभु एक वीर पुरुष था। उसके पास केवल सात सौ चुने हुए मावले थे। इस समय दिलेरखां पांच हजार पठानों और अन्य जातियों के सैनिकों को लेकर चारों ओर से पहाड़ी पर चढ़ने का यत्न कर रहा था। मुरारजी बाजीप्रभु ने बड़ी वीरता से किले की रक्षा की और ५०० पठानों को मार गिराया। अन्त में वह सात सौ वीरों को साथ लेकर मार-काट करता हुआ किले से बाहर निकला। उसकी वीरता और साहस को देखकर दिलेरखां ने उसे सन्देश भेजा कि यदि वह आत्मसमर्पण कर देगा तो वह उसे अपनी आधीनता में एक ऊँचा पद देगा। परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया और लड़ते-लड़ते युद्धभूमि में जूझ मरा। उसके बहुत से साथी भी उसके साथ कट मरे, और जो बचे वे किले में लौट आए। इस समय पुरन्दर के किले में मराठा अधिकारियों के बहुत से कुटुम्ब आश्रय लिए बैठे थे। अब शिवाजी को यह भय उपस्थित हुआ कि पुरन्दर का पतन होने पर

ये सब कैद हो जाएँगे और उन्हें अपमानित होना पड़ेगा। निरुपाय शिवाजी ने जयसिंह के पास संधि का प्रस्ताव भेजा।

११ जून को प्रातःकाल पुरन्दर के नीचे तम्बू में जयसिंह ने दरबार किया और शिवाजी ने राजसी ठाठ से वहां आकर जयसिंह से भेंट की। जयसिंह ने यथोचित सम्मान से शिवाजी का स्वागत किया। सन्धि-वार्ता आधीरात तक चलती रही और अन्त में पुरन्दर की प्रसिद्ध सन्धि पर दोनों पक्ष के हस्ताक्षर हो गए। सन्धि की शर्तों के अनुसार चार लाख हुन वार्षिक आय वाले शिवाजी के तेईस किले मुगल साम्राज्य में मिला लिए गए और राजगढ़ के किले सहित एक लाख हुन की वार्षिक आय वाले कुल बारह किले इस शर्त पर शिवाजी के पास रहने दिए गए कि वे मुगल साम्राज्य के राजभक्त सेवक बने रहेंगे। विशेष रूप से उनका यह आग्रह भी स्वीकार कर लिया गया कि अन्य राजाओं की भांति उन्हें शाही दरबार में निरन्तर रहने से मुक्त किया जाएगा, लेकिन उनका पुत्र उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बादशाह के दक्षिण आने पर उसके दरबार में उपस्थित रहेगा और दक्षिण के मुगल सूबेदार के साथ स्थायी रूप से रखे जाने वाले पांच हजार सेना का नेतृत्व भी उनका पुत्र करेगा। इन पांच हजार सवारों की तनख्वाह के लिए एक जागीर शिवाजी को दे दी गई। शिवाजी ने एक समझौता यह भी किया कि मुगल बादशाह यदि कोंकण की तराई में चार लाख हुन की वार्षिक आय का प्रदेश उनके अधिकार में छोड़ दे और बीजापुर की विजय के बाद भी ये प्रदेश उन्हीं के अधिकार में रहने दिए जाएँ तो वे तेरह वार्षिक किश्तों में चालीस लाख हुन बादशाह की भेंट करेंगे। यह भी तय हुआ कि बीजापुर की चढ़ाई के बाद शिवाजी मुगल दरबार में बादशाह को सलाम करने के लिए जाएँगे।

३५

अयाचित भेंट

अकस्मात् एकाएक शिवाजी के आगमन का समाचार सुनकर महाराज जयसिंह अवाक् रह गए। वे हड़बड़ाकर खेमे के बाहर आए। शिवाजी देखते ही दौड़कर उनके चरणों में झुके, पर महाराज ने उन्हें लपक कर अंक में भर लिया और भीतर लाकर उन्हें गद्दी पर दाहिनी ओर बैठाया और कहा—"आपने बड़ी कृपा की, अब इसे अपना ही घर समझिए।"

शिवाजी ने कहा—"महाराज, अपना घर समझ कर ही आया हूँ और श्रीमानों के सद्व्यवहार से सम्मानित हूँ। आपका सेवक हूँ और आपकी आज्ञा से विमुख नहीं। किन्तु हे महाराजाओं के महाराज, हे भारतीयोद्यान की क्यारियों के माली, हे श्रीराम के वंशधर, आपसे सब राजपूतों की गर्दन ऊँची है। आपकी यशस्विनी तलवार से बाबर के खानदान की श्रीवृद्धि हो रही है। सौभाग्य आपका साथ दे रहा है। हे सौभाग्यशाली बुजुर्ग, मैं आपको प्रणाम करता हूं।"

इतना कहकर शिवाजी ने अपना मस्तक राजा के चरणों में झुका दिया। फिर कहा—"मैंने सुना है, आप दक्षिण विजय की ठान कर आए हैं। महाराज, क्या आप दुनियाँ के सामने हिन्दुओं के रक्त से अपने को रंगना चाहते हैं? क्या आप नहीं जानते, यह लाली नहीं है, कालिमा है। यह धर्मद्रोह है।"

कुछ देर शिवाजी चुप रहे। महाराज जयसिंह के मुंह से बोली नहीं फूटी। शिवाजी ने फिर कहा—"हे वीर शिरोमणि, आप यदि दक्षिण को अपने लिए जय किया चाहते हैं, तो यह भवानी की तलवार

आपको समर्पित है। मेरा मस्तक आपके चरणों में नत है। परन्तु यदि आप उस पितृ-भ्रातृ घाती, हिन्दू विद्वेषी औरंगजेब के सेवक हैं तो महाराज, मुझे बताइए आपके साथ कैसा व्यवहार करूं। यदि तलवार उठाता हूँ तो दोनों ओर हिन्दू रक्त गिरता है। आप मुझ दास से युद्ध करके भले ही हिन्दू रक्त पृथ्वी पर गिराएँ, पर मुझसे यह नहीं हो सकता।" हे महाराजाओं के महाराज, यदि आपकी तलवार में पानी है और आपके घोड़े में दम है, तो मेरे साथ कन्धा भिड़ाकर देश और धर्म के शत्रु का विध्वंस कीजिए और रामचन्द्र के देव वंश को उज्ज्वल कीजिए। आने वाली पीढ़ियाँ आपका वरद बखान करेंगी।"

महाराज जयसिंह विचलित हुए। शिवाजी के वीर वचनों से वे आन्दोलित हो बड़ी देर तक चुप बैठे रहे। कहीं उनकी आँखों की कोर में एक आँसू आया। उन्होंने कुछ ठहरकर कहा—"राजन्, शिवाजी, राजे, मेरी बात सुनिए, मैं आपके पिता की आयु का हूँ। युक्ति, युगधर्म और राजनीति का बुद्धिमानी से पालन कीजिए। इसी में भलाई है।"

"तो महाराज, मैं आपको पिता के समान समझता हूँ। आप अपने इस पुत्र के सिर पर हाथ रखकर जो आदेश देंगे, वही मैं करूँगा।"

"ऐसा ही होना चाहिए राजन्! मेरे वचन पर विश्वास कीजिए। मैं जो कहूँगा, वह पालन करूँगा। औरङ्गजेब आपके विद्रोह को क्षमा कर देगा। और आपको सम्मानित करेगा। आप उसकी आधीनता स्वीकार कर लीजिए।"

शिवाजी गाल पर हाथ धर के गहरे सोच में डूब गए। महाराज जयसिंह ने कहा—"राजेन्द्र, मैं भी सब समझता हूँ। मेरी सामर्थ्य भी कम नहीं है और सब राजपूत राजे भी मुझसे बाहर नहीं हैं। परन्तु विद्रोह के लिए विद्रोह तो राजनीति नहीं है। युद्ध-विग्रह इसलिए होते हैं कि अनुकूल निर्णय हों और ये सब बातें शौर्य पर निर्भर नहीं होतीं।

परिस्थितियों को भी विचारना पड़ता है। मेरी बात मानिए राजन्, इससे युद्ध विग्रह में जो आपका जीवन नष्ट हो रहा है, सो उसे अपने देश की समृद्धिवर्धन में लगाइए। औरङ्गजेब जो आप चाहेंगे, वही करेगा। यह मेरा आपको वचन है।"

"तो आप मुझे आत्म-समर्पण करने की आज्ञा दे रहे हैं।"

"क्यों नहीं, अब तो मेरा आपका पिता-पुत्र का सम्बन्ध हुआ। पुत्र के लिए जो श्रेयस्कर है, वही पिता करेगा।"

"महाराज, बचपन से मैंने हिन्दू धर्म और गौ ब्राह्मण की रक्षा का व्रत लिया था, मेरा वह महान् उद्यम आज समाप्त हो जायगा।"

"नहीं राजन, आप ऐसा क्यों सोचते हैं। आपने हिन्दू राज्य दक्षिण में स्थापित किया है, मेरी बात मानने से वह अकंटक और स्थिर रह जाएगा। औरंगजेब आपको दक्षिण का राजा स्वीकार कर लेगा।"

"और यदि मैं आत्म-समर्पण न करूँ तो?"

'तो आप स्वतन्त्र हैं। युद्ध कीजिए। पर शत्रु के बलाबल पर भी विचार कीजिए। युद्ध में असीम शौर्य प्रकट करके भी आपको सफलता नहीं मिलेगी। आपके प्रिय सहचर कट मरेंगे, अथाह धन नष्ट होगा और पराजय की लज्जा पल्ले पड़ेगी। इसी से कहता हूँ—अपना राज्य, अपने सेवक, अपना धन बचा लीजिए।"

"महाराज, बचपन ही से मैं इन सह्याद्रि की दुर्गम चोटियों और तलहटियों में घूमता रहा, मैंने स्वप्न देखा कि साक्षात् भवानी ने मुझे आज्ञा दी थी कि खड्ग लो—देवता, ब्राह्मण, गौ और धर्म की रक्षा करो। मैंने धीरश्रेष्ठों को पराजित कर दुर्ग पर दुर्ग जय किए, शत्रु जय किए, देश जय किए, राज्य का विस्तार किया। हे वीर शिरोमणि, क्या मेरा वह आशय बुरा था? अब क्या मैं भवानी के आदेश को त्याग दूँ? आप पिता हैं, पुत्र को आदेश दीजिए।"

"राजन, पुत्रवत् ही कहता हूँ। अब आप स्वप्न को त्याग दीजिए। जाग्रत हो जाइए। नीति और धर्म में मेल कर लीजिए। वही कार्य कीजिए, जिसमें नीति-धर्म हो।"

"नीति-धर्म क्या है?"

"जिसमें हानि कम हो, लाभ अधिक हो। वर्तमान निरापद हो। भविष्य की आशाएँ हों। यह नीति-धर्म है, यही व्यवहार दर्शन है।"

"महाराज, मैं इस दर्शन को समझा नहीं।"

"राजन्, मेरी बात ध्यान से सुनिए, मुगल साम्राज्य की दीवारें खोखली हो रही हैं। विलास और आलस्य ने उसे ग्रस लिया है। उसके पतन में अब देर नहीं है। शीघ्र ही मुगल तख्त चूर-चूर होगा। तब हिन्दू-राज्य उदय होगा। उस दिन के लिए महाराष्ट्र में महाराज्य की प्रतिष्ठा के लिए, इस समय की बाधाओं से अपनी हानि बचा लीजिए। मेरा आशीर्वाद है कि एक दिन महाराष्ट्र में स्थापित आपकी यह हिन्दू शक्ति समूचे भारत को आक्रान्त करेगी।"

"तो महाराज, आप जैसे महापुरुष उस डगमग मुगल साम्राज्य के स्तम्भ क्यों हो रहे हैं?"

"राजन्, हम राजपूत जो व्रत लेते हैं, उसे जीते जी नहीं त्यागते। व्रत-पालन के सामने हम सुख-दुख, हानि-लाभ का विचार नहीं करते।"

"तो फिर आप लाभ की आशा से मेरा व्रत भंग कराना क्यों चाहते हैं? हम मराठे भी अपने व्रत के लिए जीवनदान से पीछे नहीं हटते। तीस बरस तक मैंने सह्याद्रि में यही किया है। अब आज वह व्रत मैं त्याग दूँ?"

शिवाजी के नेत्रों से झर-झर आँसू बहने लगे। महाराज जयसिंह जड़वत् बैठे रहे। फिर उन्होंने गम्भीर वाणी से कहा—"वीरवर,

वीरों के रक्त से सींचा जाकर ही स्वाधीनता का बीज उगता है। महाराष्ट्र का गौरव मुझ पर अप्रकट नहीं है। मुझे दीखता है कि एक दिन मराठे भारत के अधीश्वर बनेंगे। परन्तु मराठों को आप जो शिक्षा दे रहे हैं, वह मुझे ठीक नहीं प्रतीत होती। आप उन्हें आज प्राण लूटना सिखाते हैं, कल उत्कर्ष पाकर वे सारे भारतवर्ष को लूटेंगे। आज आप उन्हें चतुराई से जयलाभ करना सिखाते हैं, कल वे सम्मुख युद्ध में जय लाभ नहीं कर सकेंगे। ये वे दोष हैं, जो जातियों के रक्त में घुस जाते हैं। याद रखिए शिवाजी राजे, कल जो जाति भारत में हिन्दू राज-राजेश्वर के पद पर विराजमान होगी, आप उसके स्रष्टा, निर्माता और गुरु हैं। आप उन्हें यदि कुशिक्षा देंगे तो सैकड़ों वर्षों तक देश-देश, नगर-नगर में जहाँ मराठे जाएंगे, अपने शौर्य से नेकनामी हासिल न कर सकेंगे। आप उन्हें राजपूतों की भाँति सम्मुख रण क्षेत्र में मरना-मारना सिखाइए और कभी मत भूलिए कि आप एक युगावतार हैं। आपके प्रत्येक आचरण का प्रभाव चिरकाल तक सम्पूर्ण देश पर पड़ेगा।"

शिवाजी बहुत देर तक मौन बैठे रहे। फिर बोले—"आप भीष्म के समान राजनीति गुरु हैं, महाराज! आपके चरणों में मेरा मस्तक नत है। पर जब मैं आत्मसमर्पण कर दूँगा तो मराठों को युद्ध की शिक्षा कैसे दूँगा?"

"शिवाजी राजे, राजनीति और रणनीति क्षण-क्षण पर अपना रूप बदलती हैं। बुद्धिमान पुरुष समयानुकूल अपना रुख बदलते हैं। जय-पराजय भी सदा कायम नहीं रहतीं। आज हार, कल जीत। आज आप दिल्लीपति के शरण जाते हो, समय के हेर-फेर से कल दिल्लीपति आपकी शरण आ सकता है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि जब तक आप निर्बल हैं, तब तक अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट न कर कल के लिए बचा रखिए। यही सब नीतियों का सार है।" फिर महाराज जयसिंह ने शिवाजी के सिर पर हाथ धर कर कहा—"शिवाजी राजे,

निश्चिन्त रहो, अब न महाराष्ट्र का गौरव घट सकेगा, न हिन्दुओं का स्वातन्त्र्य। मुगल राज्य अब नहीं रहेगा।"

"तो हे महाराजाओं के महाराज, आप मेरे लिए पिता के समान हैं। यह तलवार मैं आपको अर्पण करता हूँ। मैं अब युद्ध नहीं करूंगा। मैंने आपको आत्मसमर्पण किया।" इतना कहकर शिवाजी ने तलवार महाराज जयसिंह के हाथों में दे दी। महाराज जयसिंह ने तलवार मस्तक से लगाई, चूमी और कहा—"शिवाजी राजे, यह भवानी की पवित्र तलवार है। हिन्दू धर्म की रक्षक है। आओ, इसे मैं उपयुक्त स्थान पर अपने हाथों स्थापित करूं।"

वे उठ खड़े हुए। शिवाजी भी खड़े हुए। महाराज ने तलवार उनकी कमर में बाँधकर उन्हें अङ्क में भर लिया और कहा—"अब विदा शिवाजी राजे, अपने प्रधानमन्त्री रघुनाथ पन्त को भेज देना। सन्धि की शर्तों में आपका पूरा ध्यान रखूंगा।"

"आप मेरे पिता हैं। मैं आपके आधीन हूँ। आप जैसा ठीक समझें वही कीजिए।"

इतना कहकर प्रणाम कर शिवाजी वहां से चल दिए।

३६

मुगल और बीजापुर

बीजापुर के सुलतान से औरंगजेब के क्रुद्ध हो जाने का एक और कारण था। जब औरंगजेब आगरे के तख्त के लिए संघर्ष कर रहा था, तो उससे लाभ उठाकर आदिलशाह ने अगस्त १६५७ की सन्धि-शर्तों का कुछ उल्लंघन किया था। जब जयसिंह ने शिवाजी पर अभियान किया तो उसे पता लगा कि बीजापुर दरबार गुप्त रूप से शिवाजी के साथ

मित्रता करके उसे जमीन, धन और कुर्सी आदि देकर बहुत सी सेना रखी था। जब शिवाजी के साथ सन्धि हो गई तो जयसिंह की छावनी में संगठित यह मराठी सेना खाली हो गई। उसे किसी न किसी अभियान में लगाना अत्यावश्यक था। इसलिए, आगे-पीछे की बातों का अनुमान लेकर जयसिंह ने बीजापुर पर अभियान करने की ठान ली। पुरन्दर सन्धि के अनुसार शिवाजी ने यह वायदा किया था कि यदि मुगल बीजा-पुर पर आक्रमण करेंगे तो शाही मनसबदार होने के नाते उनका पुत्र शम्भाजी २,००० घुड़सवार लेकर मुगलों की सहायता करेगा। और वह स्वयं भी ७००० चुने हुए मावलियों को लेकर मुगल सेना के साथ ही जाएँगे। जयसिंह ने बीजापुर के अधीन अन्य राज्यों को भी स्वतन्त्र होने का प्रलोभन देकर तोड़ लिया। और जब इसकी सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकीं तो १९ नवम्बर, सन् १६६५ को उसने बीजापुर की ओर कूच उठाई। उसके साथ ४० हजार शाही सेना थी। इसके अतिरिक्त नेताजी पालकर के नेतृत्व में २ हजार मराठा घुड़सवार और ७ हजार पैदल सिपाही उसके साथ थे। चढ़ाई के पहले महीने में जयसिंह बिना रोक-टोक आगे बढ़ता चला गया। राह में पड़ने वाले बीजापुरी किले—पल्टन, पथरावा, खटाव और नंगलविढ़े, जो बीजापुर से केवल ५२ मील ही उत्तर में थे, एक-एक करके खाली कर दिए गए। अन्ततः पहली मुठभेड़ २५ दिसम्बर, १६६५ को हुई। शाही सेना का नेतृत्व शिवाजी और दिलेरखां कर रहे थे और बीजापुरी सेना के १२ हजार योद्धा सेनापति सरजाखां और खवासखां के अधीन सामने आए। बीजापुरी सेना में मराठे सरदार—कल्याण के जादवराव और शिवाजी के सौतेले भाई व्यंकोजी, उनके साथ थे।

बीजापुरी सेना ने दिल्ली के सशक्त घुड़सवारों के सीधे आक्रमण से बचने के लिए कज्जाकों की युद्ध-शैली का अनुसरण किया और दल बनाकर दौड़ते-भागते लड़ते रहे। संध्या पड़ते-पड़ते बीजापुरी सेना युद्ध-

क्षेत्र मे पीछे हटने लगी किन्तु ज्यों ही विजयी मुगल सेना अपने पड़ाव की ओर फिरी, बीजापुरी सेना ने दोनों बगलों और पृष्ठ भाग पर आक्रमण कर दिया। बड़ी ही कठिनाई से परिस्थिति को संभाला गया। उधर सरजाखाँ ६ हजार घुड़सवार लेकर मंगलविदेह के किले पर जा धमका। मुगल किलेदार सरफराज खां किले से बाहर निकला और लड़ता हुआ काम आया।

दो दिन रुकने के बाद जयसिंह ने दूसरा युद्ध किया। दक्षिणी सवारों ने पूर्व की भाँति अलग-अलग दलों में बँटकर छुट-पुट आक्रमण किए, किन्तु सूर्यास्त होते-होते वे भाग निकले। ६ मील तक मुगलों ने भागते हुए उनका पीछा किया। अब जयसिंह बीजापुर से कोई १२ मील तक आ पहुँचा, परन्तु यहाँ आदिलशाह ने बड़ी दृढ़ता और वीरता से उसका सामना किया। जयसिंह तेजी से बढ़ता हुआ मंगलविदेह तक पहुँचा परन्तु उसके पास न बड़ी-बड़ी तोपें थीं और न आवश्यक युद्ध सामग्री ही। यह सामग्री उसने परेण्डा के किले से नहीं मंगवाई थी। इसी समय आदिलशाह को गोलकुण्डा से भारी सहायता मिल गई और मुगल सेना को भूखों मरने की नौबत आ गई। उसे वापस लौटना पड़ा और बीजापुरी सेना ने उसे खदेड़ा। २७ जनवरी को वह परेन्डा से १६ मील दक्षिण में सोना नदी पर स्थित सुलतानपुर में जा पहुँचा। उसे जनवरी का पूरा महीना लौटने में लग गया और इस बीच उसे बड़ी दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा। सरजाखाँ ने उसकी बहुत-सी खाद्य व युद्ध-सामग्री लूट ली। उधर शिवाजी ने पन्हाला के किले पर जो आक्रमण किया, उसमें शिवाजी के कोई १,००० सैनिक काम आए और फिर भी किला उनके हाथ नहीं आया। शिवाजी का प्रधान अधिकारी नेता शिवाजी से विश्वासघात करके और बीजापुरियों से ४ लाख हुन रिश्वत लेकर उनसे जा मिला। ये सब दुर्घटनाएँ तो मुगलों के अभियान के विरोध में थीं ही, कि आदिलशाह की मदद के लिए

गोलकुण्डा के सुलतान ने १२ हजार घुड़सवार और ४० हजार पैदल सेना भेज दी। फिर भी जयसिंह ने बीजापुर से हटकर दो लड़ाइयाँ लड़ीं। परन्तु, उनका अच्छा फल उसे नहीं मिला। उसे मंगलवेढ़ और फल्टन के किले भी खाली कर देने पड़े और वह परेन्डा से १८ मील उत्तर-पूर्व में घूम नामक स्थान पर धकेल दिया गया। अब बीजापुर के किलों में से एक भी उसके अधिकार में न था। वह हताश होकर सीधा औरंगाबाद लौट गया। इस प्रकार बीजापुर का वह अभियान एक प्रकार से विफल ही हुआ, अपरिमित धन-हानि होने और इस करारी हार की सूचना पाने से औरंगज़ेब जयसिंह से बहुत नाराज़ हो गया और उसे हुक्म दिया गया कि वह शाहज़ादा मुअज्ज़म को दक्षिण की सूबेदारी के अधिकार सौंपकर वहां से चला आए। अपमान से क्षुब्ध और निराशा से भरे हुए जयसिंह ने आगरे की ओर कूँच किया। बीजापुर के अभियान में उसका एक करोड़ रुपया अपना निजू खर्च हुआ था, जिसमें से एक पैसा भी उसे वापस नहीं मिला। अपमान और निराशा ने उसका दिल तोड़ दिया और २८ अगस्त, १६६७ को बुरहानपुर में वह मर गया।

सच पूछा जाय तो जयसिंह को पूर्ण युद्धकौशल काम में लेने का अवसर ही नहीं मिला था। उसके पास सेना अनुपयुक्त एवं अपर्याप्त थी और युद्ध व खाद्य-सामग्री भी बहुत कम थी। घेरा डालने के योग्य एक भी तोप उसके पास न थी।

घरेलू सैनिक विद्रोह ने बीजापुर महाराज्य की कमर तोड़ दी थी। राजकीय सत्ता के निर्बल हो जाने पर सारा राज्य सैनिक जागीरों में बँट गया था और महत्वपूर्ण पदों और अधिकारपूर्ण कार्यों को लालची सेनापतियों ने आपस में बाँट लिया था, जिससे राज्य की सारी सत्ता इनके हाथ में थी। ये सैनिक चार विभिन्न जाति के थे। एक अफ़गान थे—जिनकी जागीरें पश्चिम में कोंकण से लेकर नेकापुर तक

फैली थीं। दूसरे हब्शी थे–जो पूर्व में करनूल परगने और रायचूर दुआब के एक भाग वाले प्रदेश पर शासन करते थे। तीसरे महदवी सम्प्रदाय के सदस्य थे। चौथे नवागत अरब मुल्ला थे–जिनकी जागीरें कोंकण में फैली हुई थीं। राज्य के हिन्दू पदाधिकारी और आश्रित हिन्दू राजाओं की गणना दलित जातियों में होती थी। राज्य पर अधिकार रखने वाले ये सारे ही राजकीय अधिकारी विदेशी थे, जो यहीं बस कर वंश परम्परागत सामन्त-सरदार बन बैठे थे। प्रत्येक दल वाले अपनी ही जाति में विवाह करते थे, जिससे वे यहाँ की स्थानीय आबादी में सम्मिलित नहीं हो सके, और न विदेशी शासक अधिकारियों का यह दल कभी राज्य-शासन का अविभाज्य अङ्ग बन सका। उनका एकमात्र उद्देश्य निजी स्वार्थ था। उनमें देशभक्ति की भावना न थी, क्योंकि वह देश उनका अपना न था। वे राजनैतिक खानाबदोश थे।

मुहम्मद आदिलशाह के शासनकाल में बीजापुर राज्य का विस्तार चरम सीमा पर पहुँच चुका था। अरब सागर से बङ्गाल की खाड़ी तक सारे भारतीय प्रायद्वीप में वह फैला हुआ था। उसकी वार्षिक आय ७ करोड़ ८४ लाख रुपए थी। इसके अतिरिक्त आधीन जमींदार और राजाओं से सवा ५ करोड़ रुपयों की रकम टाँके में मिलती थी। उसकी सेना में ८० हजार घुड़सवार, ढाई लाख पैदल और ५३० लड़ाकू हाथी थे।

सन् १६७२ में अली आदिलशाह द्वितीय मर गया और उसके साथ ही बीजापुर राज्य का सारा गौरव भी लुप्त हो गया। हब्शी खवासखाँ ने राज्य-सत्ता हथिया ली और आदिलशाह वंश के अन्तिम सुलतान बालक को राज्य-सिंहासन पर बैठाकर मनमानी करने लगा। भूतपूर्व वजीर अजीर मुहम्मद खिन्न होकर दरबार से चला गया और राजतन्त्र का तेजी से पतन होने लगा।

३७

अर्द्ध रात्रि की सभा

अर्द्धरात्रि व्यतीत हो रही थी। राजगढ़ में एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण राजसभा का अधिवेशन हो रहा था। शिवाजी के सभी मुख्य राज-कर्मचारी, मन्त्री, सेनापति, न्यायशास्त्री उपस्थित थे। तानाजी मौलसरे ने आँखों में आँसू भरकर तलवार पर हाथ पटक कर कहा—"हाय महा-राज, हिन्दू गौरव की रक्षा के लिए वर्षों से हमने नींद और भूख तथा दुःसह कष्टों की परवाह न कर जो कर्तव्य पालन किया, वह सब आज विफल हो गया।"

"निष्फल नहीं हो रहा वीरवर, सफल हो रहा है। हम स्वप्न से सत्य जगत में आए हैं।"

"परन्तु आप आत्मसमर्पण कर दिल्लीश्वर को सलाम करने जा रहे हैं!"

"आत्मसमर्पण केवल शिवा ने किया है, मराठों ने नहीं। मेरे आत्मसमर्पण का लाभ उठाकर तुम अपनी तलवारों की धार और तेज कर लो। आज मैं दिल्ली जा रहा हूँ। कल उनकी जरूरत पड़ेगी। पेशवा, तुम क्या कहते हो? क्या मैं दिल्ली न जाऊँ।" शिवाजी ने अपने बालसखा और मन्त्री सोमेश्वर से पूछा।

"जाइए महाराज, किन्तु यह न भूलिए कि सह्याद्रि की उत्तुङ्ग शैल आपके लौटने की बाट देखती रहेंगी और हम कान खड़े करके सह्याद्रि की घाटियों में गूंज उठने वाली ध्वनि की प्रतीक्षा करेंगे कि हिमालय से कन्याकुमारी तक हिन्दू राज्य की स्थापना के लिए छत्रपति ने अपनी तलवार म्यान से बाहर कर ली है।"

शिवाजी ने लाल-लाल अङ्गारे के समान नेत्रों से अपने चारों ओर देखा और कहा—"यह भवानी की तलवार है। महाराज जयसिंह वृद्ध हैं, वीर हैं, हिन्दू हैं। मैं उन पर तलवार नहीं उठा सका। उन पर श्रद्धा के फूल बिखेर आया हूँ। निस्सन्देह उनका जीवन मुगलों की दासता में व्यतीत हुआ है परन्तु उनका क्षत्रियत्व और तेज कायम है। मैंने उनकी सीख मानकर केवल अपमानित होने का खतरा उठाया है। पर याद रखना, इसकी मैं बड़ी-से-बड़ी कीमत लेकर वापस लौटूंगा। वचन दो कि लौट कर आने पर तुम्हारी तलवारें तैयार मिलेंगी।"

"अवश्य महाराज, हमारी तलवारें कभी म्यान में नहीं होंगी।'

"तो मित्रो, हमने महाराज जयसिंह से सन्धि की है। हमारे और कपटी औरङ्गजेव के बीच वह वृद्ध राजपूत है, जिसकी तलवार की धार अटक से कटक तक प्रसिद्ध है। उन्होंने मुझसे कहा था कि जब सत्य से हिन्दू धर्म की रक्षा न हुई तो सत्य छोड़ने से कैसे होगी। वह बात मैंने गाँठ बाँध ली है और तब तक मैं सन्धि से बद्ध हूँ, जब तक शत्रु सन्धि भङ्ग न करे।"

"महाराज, यदि औरंगजेब ने आगरा में आपके साथ दग़ा की, संधि भंग की, आपको बन्दी किया ?"

"भवानी के आदेश से मैं आगरे जा रहा हूँ। भवानी का जो आदेश होगा, वह करूँगा। तुम डरते क्यों हो, अन्ताजी। यदि औरंगजेब ने दग़ा की तो मराठों की तलवारें भी ठण्डी नहीं हो गई हैं। वह आग बरसेगी कि दिल्ली और आगरा जलकर क्षार हो जायगा। अन्ताजी, आवाजी, स्वर्णदेव और मेरेश्वर! मैं कुल राज्य का भार आप लोगों पर छोड़ता हूँ। आप मेरे लौटने तक राज्य-व्यवस्था तथा शासन कीजिए। और तानाजी, तुम अपने तीन सौ चुने हुए मराठों के साथ छद्म वेश में मुझसे प्रथम आगरा में जा पहुँचो तथा बिखर कर भिन्न-भिन्न स्वरूपों में रहो तथा बादशाह और उसके दरबार की

गतिविधि देखो। मेरे साथ पुत्र शंभाजी, तीन मन्त्री और एक सहस्र सवार रहेंगे। उन सवारों को चुन दो।"

३८

प्रस्थान

कूच-दर-कूच करते जब शिवाजी आगरा से केवल एक मंजिल ही दूर रह गए, तो भी कोई बड़ा सरदार उनकी अगवानी को हाजिर नहीं हुआ। यह शिवाजी के प्रति एक असंभाव्य अशिष्ट व्यवहार था। और शिवाजी इस बात से खिन्न-मन आगरे की बात सोचने लगे। न जाने आगरे में औरङ्गजेब उनसे कैसा व्यवहार करेगा। मई के आरम्भिक दिन थे। दो प्रहर होते-होते प्रचण्ड गर्मी हो जाती थी। शिवाजी वहाँ दिन भर पड़ाव डाले पड़े रहे। सायंकाल तक भी उनकी अगवानी को कोई नहीं आया, तो वे अत्यधिक अधीर और क्रुद्ध हुए। इस समय उनके साथ एक हजार शरीर रक्षक सवार तथा तीन मन्त्री थे। परन्तु वे अपने मन की बात किसी से कहना न चाहते थे। उनके ललाट पर चिन्ता की रेखाएँ पड़ी थीं, तथा मुख गम्भीर हो रहा था। वे धीरे-धीरे टहल रहे थे और अपने ६ बरस के पुत्र शम्भाजी से बीच-बीच में बात भी करते जाते थे। बालक शम्भाजी को आगरा और बादशाह को देखने की बड़ी उत्सुकता थी। उसने पूछा—"बापू, दादाजी भाऊ कहते हैं, बादशाह बहुत बड़ा आदमी है। क्या वह हमारे हाथी से भी बड़ा है।"

शिवाजी ने बालक के प्रश्न को सुनकर कहा—"नहीं बेटे, वह तो मेरी इस तलवार से भी छोटा है।"

"लेकिन बापू, फिर सब लोग उससे डरते क्यों हैं?"

"कौन डरता है?"

"दादाभाऊ कह रहे थे कि उसे सलाम करना होगा। उसके पास कोई नहींजा सकता। वहां कटहरा लगा है। दूर से सलाम करना होगा। वापू, पास जाने से क्या वह काट खाता है ?"

"अब तो हम आगरे आ ही गए हैं। चलकर देखेंगे।"

"तो मेरी तलवार मुझे देना बापू, वह काटने लगेगा तो मैं उसके मुंह में तलवार घुसेड़ दूंगा।"

"ऐसा ही करना, बेटे। पर क्या कारण है कि आगरे से कोई उमराव नहीं आया ?"

"उमराव यहां क्यों आएगा ?"

"हमारे सत्कार के लिए। हम बिना उसके आगरे में थोड़े ही जा सकते हैं!"

"क्यों नहीं जा सकते हैं। अपने दक्षिण में तो हम चाहे जहां जा सकते थे।"

"लेकिन बेटे, आगरे में तभी जाएंगे, जब कोई उमराव आएगा। पर अब तो सूर्यास्त हो रहा है। अभी तक कोई नहीं आया।"

इसी समय उन्होंने देखा कि दो सवार घोड़ा दौड़ाते हुए आ रहे हैं। आगन्तुक की इत्तला सेवक ने दी कि महाराज जयसिंह के पुत्र कुंवर रामसिंह मुजरा करने पधारे हैं।

"कुंवर रामसिंह ?" शिवाजी की त्यौरियों में बल पड़ गए। कुंवर कौन ?"

"वे ढाई हजारी मनसबदार हैं।"

"और उनके साथ दूसरा सवार कौन है ?"

"एक राजपूत सैनिक है।"

"केवल सैनिक ?"

शिवाजी ने होंठ चबाए। किन्तु फिर आहिस्ता से कहा—"आने दो।"

कुंवर रामसिंह ने आगे आकर शिवाजी को प्रणाम किया। फिर हँसते हुए उनसे कुशल-मङ्गल पूछा। यह भी कहा कि उनके पिता महाराज जयसिंह ने लिखा है कि आगरे में आपकी सब सुविधाओं और सुरक्षा का ध्यान रखूं। अब आप जैसी आज्ञा देंगे, वही मैं करूँगा।"

कुमार के उदार और निष्कपट व्यवहार को देख शिवाजी सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कुमार का आलिंगन करके कहा—"मेरे आगरा चलने के सम्बन्ध में तुम्हारे क्या विचार हैं तथा बादशाह ने कैसा प्रबन्ध किया है।"

"आपको किसी प्रकार की आशंका करने की आवश्यकता नहीं है। मैं आपका सेवक अपने दो हजार राठौरों के साथ रकाब के साथ हूँ। परन्तु आश्चर्य है कि मुखलिसखां अभी नहीं आए।"

"मुखलिसखां कौन है?"

"शाही मनसबदार है।"

"उसका मनसब कितना है?"

"डेढ़ हजारी जात का।"

"क्या कहा, डेढ़ हजारी जात का?"

"जी हां, मुखलिसखाँ यूं बादशाह के मुंहलगे हैं।"

"तो क्या आगरे में हमारा स्वागत ठीक हो रहा है?"

"महाराज, किसी बात की चिन्ता न करें। मैं आपकी सेवा में उपस्थित ही हूँ।" इसी समय मुखलिसखां भी आए। उनके साथ केवल दो सवार थे।

शिवाजी ने इस सरदार की ओर देखकर कहा—"शक्ल से तो तबलची मालूम होता है। उसके दोनों साथी शायद महज सवार हैं।"

"जी हां।"

"तो बुलाओ उसे, देखूँ क्या सुर्खी लाता है।"

मुखलिसखाँ ने जरा अकड़ कर शिवाजी को यूं ही सलाम किया

और कहा—"हजरत बादशाह सलामत की ओर से मैं आपका आगरे में स्वागत करता हूँ।"

लेकिन शिवाजी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया, न कुछ जवाब ही दिया। वह मुंह फेर कर रामसिंह से बातें करने लगे। उन्होंने जरा मुखलिसखां को सुनाकर कहा—"ये मुखलिसखां कोई बहादुर आदमी हैं ?"

इस पर मुखलिसखां चिढ़ गया। उसने कहा—"क्यों जनाब, आप क्या आगरे में बहादुरों की तालाश में आए हैं ?"

"शायद, मैंने सुना था कि आगरे में एक खेत है, जिसमें बहादुर पैदा होते हैं।"

रामसिंह ने बात बढ़ती देखकर कहा—"रात हो रही है। मेरी समझ में तो अब हमें चलना चाहिए। कल बादशाह की सालगिरह का जुलूस है। उसमें आपको दरबार में हाजिर होना होगा। कल ही दरबारे शाही में आप शहनशाह को सलाम करके खिलत और मनसब हासिल कर लीजिए।"

"कुंवर रामसिंह, मैं चाहता हूँ सब बातों पर अच्छी तरह विचार कर लिया जाय। बादशाह के मन में कोई दग़ा हो तो मुझसे कह दो।"

"महाराज, प्रथम तो पिताजी की आज्ञा है, दूसरे हम राजपूत अपनी जान पर खेल जाएँगे यदि आपका बाल बाँका भी हुआ। आप इत्मीनान से आगरे पधारिए, असल बात यह है कि बादशाह ने आपको अपने मतलब से बुलाया है। वह आपकी खूब खातिर करेगा और आपकी सब इच्छाएँ पूरी करेगा।"

"लेकिन उसका मतलब क्या है ?"

"क्या पिताजी ने आपको नहीं बताया था ?"

"उन्होंने कहा था कि बादशाह शाहे ईरान पर चढ़ाई करना

चाहता है, और उसने तुम्हारी बहादुरी और दयानतदारी पर भरोसा करके उस चढ़ाई में सम्मिलित करने तुम्हें बुलाया है।"

"बस, तो समझिए बादशाह आपकी जेरेकमान एक बड़ी फौज फारस की ओर भेजने का कस्द कर चुका है। आप जैसी कि आशा है, यदि इस मुहिम में कामयाब होंगे, तो आपकी शोहरत और इज्जत दर्बारेशाही में उसी रुतबे को पहुँच जाएगी जिस पर मेरे पिता व महाराज जसवन्तसिंह जी की है।"

"खैर, तो तुम इस मनहूस भांड को मेरी आँखों से दूर आगरे रवाना करदो और मेरे हमरकाब डेरे तक चलो।"

रामसिंह ने हँसते हुए डेढ़ हजारी मनसवदार मुखलिसखाँ से कहा—"खाँ साहब, मैं राजा साहब के हमरकाब आगरे आ रहा हूँ। आप जल्दी आगरे तशरीफ ले जाकर यह खबर जहाँपनाह को पहुँचा दीजिए।"

"लेकिन यह तो कोई उजड्ड भूमिया मालूम होता है। क्या इस दहकानी को आप बादशाह सलामत के रूबरू ले जाएंगे।"

"इस मसले पर बाद में गौर कर लिया जायगा। खाँ साहब, आप आगे चलकर इत्तलाह कर दीजिए।"

"या वहशत, क्या खौफनाक आखें हैं जैसे इन्सान को जिन्दा निगल जाएँगी।"

रामसिंह ने हँसकर कहा—"कुछ डर नहीं है खाँ साहब, आप जल्द कूच कीजिए। घड़ी भर में हम लोग भी रवाना होते हैं।"

खान ने और उज्र नहीं किया। उछलकर घोड़े पर चढ़ा और घोड़ा आगरे की ओर गर्द उड़ाता दौड़ चला।

३६

आगरा

उन दिनों का आगरा आजकल के आगरे से भिन्न था। बहुत-सी बातों में वह दिल्ली से बढ़ा-चढ़ा था। दिल्ली आगरा की अपेक्षा नौ-आबाद थी। जिस काल की बात इस उपन्यास में है, उस समय दिल्ली को बसे अभी ४० ही साल हुए थे। आगरा की गर्मी से घबरा कर शाहजहाँ ने दिल्ली की नई बस्ती बसाई थी जो शाहेजहानाबाद कहाती थी। पुरानी दिल्ली के इस समय भी मीलों तक खण्डहर फैले हुए थे और सब सरकारी इमारतें, तथा लाल किला तक उन पुराने खण्डहरों से ईंट-पत्थर आदि लेकर बसाई गई थी। दिल्ली का निर्माण अब तक भी चल ही रहा था। वह शहर यमुना किनारे एक चौरस मैदान में अर्द्ध चन्द्राकार बसा था जिसके पूर्वी दिशा में यमुना थी जिस पर नावों का पुल था और तीनों ओर पक्की शहरपनाह थी जिसमें सौ-सौ कदमों पर बुर्ज बने हुए थे। बीच-बीच में कच्चे पुश्ते भी थे। यह शहर मुश्किल से तब दो-ढाई मील के घेरे में आबाद था जिसमें बीच-बीच में बागात और मैदान भी थे। परन्तु आगरा दिल्ली की अपेक्षा बड़ा शहर था। अब तक भी वह बादशाहों का मुख्य निवास स्थान रहा था। राजाओं और अमीरों की यहाँ बड़ी-बड़ी हवेलियाँ थीं। बीच-बीच में सुन्दर पक्की सराएँ और धर्मशालाएँ थीं जो सार्वजनिक उपयोग में आती थीं। इसके अतिरिक्त ताजमहल और अकबर के सिकन्दरे के कारण इसकी विशेषता बहुत बढ़ गई थी। परन्तु आगरे के चारों ओर शहरपनाह नहीं थी। न इसमें दिल्ली की भाँति पक्की साफ-सुथरी सड़कें ही थीं। कुल चार-पाँच बाजार थे, जिनमें व्यापारी लोगों ही की बस्ती थी। बाकी सब छोटी-छोटी गलियाँ थीं। जब बादशाह

आगरे में रहता था तो इन गलियों में आने-जाने वालों की वड़ी भीड़ जमा हो जाती थी और खूब धक्कम-धक्का होती थी। अमीर और साहूकारों ने अपने मकानों के सहन में साएदार वृक्ष लगवाए थे, जिसके कारण आगरे का दृश्य देहाती-सा तो जरूर दीख पड़ता था परन्तु बहुत सुहावना मालूम देता था। वनियों की हवेलियाँ बीच-बीच में गढ़ी जैसी ज्ञात होती थीं।

१२ मई का प्रभात वहुत सुन्दर था। इस दिन आगरा शहर और दरवारेशाही की सजावट खास तौर पर की गई थी क्योंकि इस दिन वादशाह की ५० वीं वर्षगाँठ थी। शहर और किले में जश्न मनाए जा रहे थे, सड़कों पर भारी भीड़ थी, गर्द दवाने के लिए सड़कों पर दवादव छिड़काव किया जा रहा था और उस गर्म प्रभात में मिट्टी पर पानी पड़ने की सोंधी सुगन्ध वातावरण में भर रही थी। किले के वाहरी फाटक से ही दरवारहाल तक सैनिक पंक्तिवद्ध खड़े थे। उनके हाथों में छोटी-छोटी वन्दूकें थीं जिन पर लाल रंग की कनात की खोल चढ़ी हुई थी। पाँच-छः सवार अफसर किले के फाटक पर भीड़-भाड़ जमा होने से रोक रहे थे और लोगों को हटा कर रास्ता साफ कर रहे थे।

बादशाह की सवारी पालकी पर निकली। पालकी पर आस-मानी कमखाव के पर्दे पड़े थे। डंडों पर सुर्ख मखमल चढ़ी थी। उसे ८ चुने हुए तथा भारी वर्दी वाले कहार कन्धों पर उठा रहे थे। पीछे बहुत से अमीर थे—कोई घोड़े पर, कोई पालकी पर। इन्हीं के साथ मनसबदार और चाँदी की छड़ियाँ लिए हुए चोबदार भी थे।

शहर से किले तक की सड़क खचाखच भरी थी। किले के सामने वाले चौक में अमीर, राजे, मनसवदार जो दरवार में हाजिर होने को आए थे, ठाठ से घोड़ों पर आगे वढ़ रहे थे। उनके घोड़े सजे हुए थे और प्रत्येक के साथ कम-से-कम चार खिदमतगार दौड़ रहे थे और

भीड़-भाड़ में अपने मालिक के लिए राह बना रहे थे। कुछ अमीर और राजे हाथियों पर आए थे, कुछ पालकियों पर जिन्हें छः कहार कन्धों पर उठा रहे थे। ये अमीर निरन्तर पान खा रहे थे। उनके बगल में एक खिदमतगार चाँदी का उगालदान लिए हाजिर था जिसमें वे कभी-कभी पीक गिरा देते थे। दूसरी ओर दो नौकर मक्खियों और धूल से मालिक को बचाने के लिए उनके सिरों पर मोर्छल फेर रहे थे। तीन-चार प्यादे आगे-आगे लोगों को हटाते चल रहे थे। शोर बहुत था। सिपाही लोग जोर-जोर से चिल्ला कर लोगों को हटाते थे।

शिवाजी के लिए यह सब कुछ निराला दृश्य था। इतनी भीड़-भाड़ और अव्यवस्था में उनका दम घुट रहा था। वे भी अपने दस सरदारों और पुत्र शम्भाजी सहित किले में आगे बढ़ते जाते थे। कुंवर रामसिंह उनके घोड़े के साथ था और सब प्रश्नों का उत्तर देता जा रहा था।

अब वे किले के भीतरी फाटक तक जा पहुँचे। सामने एक लम्बी सड़क चली गई थी। यहाँ उमरा लोग सजे-धजे कक्षों में पहरा-चौकी दे रहे थे। बड़े-बड़े दीवानखाने और उनके आगे के बागों की शोभा देखकर वे हैरान हो रहे थे। इन खेमों में बेशुमार रुपया सिर्फ सजावट के काम में ही खर्च किया गया था। उनमें चिकनदोज और जरदोजी का काम हो रहा था। सुनार, दर्जी, चित्रकार, नक्काश, रङ्गसाज, बढ़ई, खरादी, दर्जी, मोची, कमखाब और मखमल बुननेवाले जुलाहे, छोटी-छोटी कोठरियों में बैठे अपने-अपने काम कर रहे थे।

यहां से आगे खासोआम की इमारत थी जो महरावों पर खड़ी थी। महराबें ऐसी बनी थीं कि एक महराब से दूसरी में जाया जा सकता था। इसके सामने वाले दरवाजे के ऊपर बालाखाना बना हुआ था जिसमें शहनाई, नफीरियां और नगाड़े बज रहे थे। दस-बारह नफीरियां और इतने ही नक्कारे एक साथ बज रहे थे। सबसे बड़ी

नफीरी ९ फुट लम्बी थी। नक्कारे लोहे या पीतल के थे जिसकी गोलाई ६ से ८ फुट तक थी। उनका शोर इतना था कि कान बहरे हो रहे थे। दूर से अवश्य यह सुरीले लगते थे।

४०

बादशाह के रूबरू

आमखास में दरबार लगा था। आज सालगिरह का दरबार था। अतः बड़ी तड़क-भड़क से सजाया गया था। दीवाने खास के बीचोंबीच शहनशीन पर बादशाह का प्रसिद्ध तख्तताऊस रखा था जिसपर बादशाह बैठा था। उसके दाएँ-बाएँ शहजादे खड़े थे। ख्वाजा सरा मोर्छल हिला रहे थे। बहुत से गुलाम शाही हुक्म बजा लाने को हाथ बांधे पीछे कतार में खड़े थे। तख्त के नीचे चांदी का जंगला लगा हुआ था जिसमें उमरा, राजे और राजाओं के प्रतिनिधि हाथ बांधे खड़े थे। सब की निगाहें नीची थीं, तख्त से कुछ दूर हट कर मनसबदार या छोटे उमरा खड़े थे। बीच का थोड़ा-सा स्थान खाली था। लोगों के सलाम व मुजरे चल रहे थे। बीच-बीच में नजरें और भेंट में आईं विविध बहुमूल्य वस्तुएँ बादशाह की नजर के सामने लाई जा रही थीं। बादशाह के मुंह से कोई शब्द निकलता था तो दरबार के बड़े-बड़े उमरा 'करामात' 'करामात' का मर्मर शब्द करते थे और 'सुबहानअल्लाह, क्या इर्शाद हुआ है' कहते थे।

बादशाह ने भी खूब तड़क-भड़क की पोशाक पहनी थी। उसके शरीर और पगड़ी पर बहुमूल्य रत्न चमक रहे थे। उसके कण्ठ में जो मोतियों की माला लटक रही थी, वह नाभि तक पहुँच रही थी। उमरा लोगों की पोशाकें भी बहुमूल्य थीं।

आम खास के बाहर एक बड़ा खेमा लगा था, जो सहन में आधी दूर तक फैला हुआ था। यह चारों ओर से चांदी के पत्तरों से मढ़े

हुए कटहरे से घिरा था। वहां बहुत देर तक शिवाजी को बादशाह के रूबरू जाने से प्रथम प्रतीक्षा में खड़ा रहना पड़ा। इसके बाद वजीरे-आजम का संकेत पाकर कुंवर रामसिंह उन्हें दरबार में ले गए। तख्त के सामने नीचे एक चौकी थी। उस पर भी चांदी का कटहरा लगा था और ऊपर जरी की झालर का एक बड़ा चंदुआ तना था। वहां के खम्भे भी जरी के कपड़े से मढ़े थे। फर्श पर कीमती कालीन बिछे थे। यहीं लाकर शिवाजी और शम्भाजी को खड़ा किया गया। शिवाजी ने यहां खड़े होकर तीन बार जमीन तक झुककर और हाथों को माथे से लगाकर शाही तरीके से बादशाह को सलाम की। और एक हजार मुहर नजर गुजारीं तथा ५ हजार रुपए न्यौछावर किए। बादशाह ने एक बार नजर उठाकर शिवाजी की ओर देखा। एक कुटिल मुस्कान के साथ उसने आहिस्ता से कहा—"खुश आमदीद शिवाजी राजे," और उनकी ओर से आंखें फेरलीं। अब वजीरेआजम के संकेत से उन्हें तख्त के सामने ले जाकर पंच हजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया।

दरबार का काम चलता रहा और सब कोई शिवाजी को जैसे बिलकुल ही भूल गए।

शिवाजी का मन दुख, सन्देह और क्षोभ से भर गया। वह पहले ही इस बात से खीझ रहे थे कि उनके आगरे पहुंचने पर आगरे से बाहर आकर किसी बड़े उमराव ने उनका स्वागत नहीं किया। सिर्फ कुंवर रामसिंह जो ढाई हजारी मनसबदार था और मुखलिसखां डेढ़ हजारी मनसबदार-इन दो मध्यम श्रेणी के उमरावों ने कुछ ही दूर आगे बढ़कर शिवाजी की अगवानी की थी। दरबार में भी उन्हें पाँच हजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया था। सालगिरह के उत्सव के पान सब उमरावों को दिए गए, लेकिन शिवाजी को पान भी नहीं मिला। जलसे की खिलअतें और सिरोपाव शाहजादों, वजीर जफरखाँ

श्रौर महाराज जसवन्तसिंह को दिए गए, शिवाजी को खिलअत भी नहीं मिली। उधर घण्टे भर से खड़े रहने के कारण वे थक गए थे और इस अपमान से, गुस्से से लाल हो उठे। औरङ्गजेब की नजरों से यह छिपा न रहा, तब उसने रामसिंह से कहा कि शिवाजी से पूछो कि उनकी तबियत कैसी है। कुंवर शिवाजी के पास आया, तब शिवाजी ने गुस्से से लाल होकर कहा—"तुमने देखा है, तुम्हारे बाप ने देखा है। क्या मैं ऐसा आदमी हूँ कि जानबूझकर मुझे यों खड़ा रखा जाए।" फिर उन्होंने चिल्लाकर कहा—"ये कौन हैं जो औरत के समान गहने पहन कर मेरे आगे खड़े हैं। वे मुझसे ज्यादा इज्जत रखते हैं तो युद्धक्षेत्र में अपनी योग्यता प्रकट करें। मैं यह शाही मनसब छोड़ता हूँ।"

वे मुड़कर बादशाह की तरफ पीठ करके वहाँ से चल दिए और जाकर एक ओर बैठ गए। रामसिंह ने उन्हें समझाया लेकिन उन्होंने एक न सुनी और कहा—"मेरा सिर काटकर ले जाना चाहो तो ले जा सकते हो, लेकिन मैं बादशाह के सामने अब नहीं आता। मुझे जान-बूझ कर बादशाह ने जसवन्तसिंह के नीचे खड़ा किया है, इसलिए मैं सिरोपाव भी नहीं पहनता।"

बादशाह ने मुल्तफितखां, आकिलखां और मुखलिसखां को समझाने-बुझाने भेजा, परन्तु शिवाजी टस से मस न हुए। तब बादशाह ने रामसिंह को हुक्म दिया कि वह उसे डेरे पर ले जाकर समझा-बुझाकर शान्त करे। रामसिंह उन्हें अपने साथ ले गया।

४१

औरंगजेब की कुटिल नीति

शिवाजी उस मसाले के नहीं बने थे, जो किसी भी कीमत पर पराधीनता स्वीकार करते और दूसरे के सामने झुकते। वह तो उन

अवतारी महापुरुषों में थे जिनका जन्म स्वतन्त्रता और नए राज्यों की स्थापना के लिए होता है। परन्तु महाराज जयसिंह बड़े ही मिठबोले दरबारी पुरुष थे, उन्होंने शिवाजी को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर और डरा-धमका कर आगरा जाने के लिए तैयार किया था। शिवाजी जब आगरा जाने का इरादा पक्का कर चुके तो उन्होंने बड़ी ही दूरदर्शिता और राजनैतिक सूझ-बूझ से काम लेकर अनुपस्थिति में अपने राज्य-प्रबन्ध की व्यवस्था की थी। उन्होंने अपने प्रतिनिधियों को शासन-सम्बन्धी पूरे अधिकार दे दिए थे और अपनी माँ जीजाबाई को राज्य का अभिभावक वनाकर ऊपरी देख-रेख का काम उन्हें सुपुर्द कर दिया। औरङ्गजेब ने चाहा था कि शिवाजी को फारस पर चढ़ाई करने भेजा जाय। इस काम में शिवाजी को लगाने का उसका उद्देश्य यह था, कि या तो शिवाजी वहां से जीवित लौटेगा ही नहीं और यदि लौटा भी तो कम-से कम पांच वर्ष उसे इस अभियान में अवश्य लगेंगे। तब तक वह दक्षिण में अच्छी तरह अपने पंजे जमा लेगा। परन्तु जब यह खबर आगरे में प्रसिद्ध हुई कि शिवाजी को आगरे में लाया जा रहा है तो इस बात का बहुतों ने विरोध किया। विरोधियों में सबसे प्रमुख थीं शाइस्ताखाँ की स्त्री जिसका अब भी बादशाह पर काफी असर था। वह वड़ी जोशीली औरत थी। वह शिवाजी से घृणा करती थी। वह उस भयानक रात की घटना नहीं भूली थी जब शिवाजी पूना के महल में घुस पड़े थे, और शाइस्ताखाँ को बड़ी कठिनाई से निकल भागने का अवसर मिला था। शिवाजी के हाथों से उसका एक पुत्र भी वध हुआ था। अतः उसने वहुत रो-पीटकर बादशाह की इस आज्ञा का विरोध किया और बादशाह का इरादा वदल दिया। परन्तु शिवाजी तो अब दक्षिण से चल चुके थे। राह खर्च का एक लाख रुपया अब उन्हें दिया जा चुका था। अतः शिवाजी को वीच में नहीं रोका जा सकता था। औरङ्गजेब ने अब यही निर्णय किया था कि आगरा आनेपर या तो उन्हें

मरवा डाला जाय या क़ैद कर लिया जाय । इसी से उसने दरबार में उनकी अवज्ञा की थी। पर उसे यह गुमान भी न था कि वह भरे दरबार में इस प्रकार से दरबारी अदब को भङ्ग करेंगे । अतः अब उसने अपने इस इरादे को निश्चय में बदल दिया कि खतरनाक दुश्मन को अब जिंदा आगरे से बाहर न जाने दिया जाय।

४२

शेर पिंजरे में

सालगिरह के दरबार के बाद सबको यह आशा थी कि शिवाजी शान्त होकर दरबार में आएँगे और बेअदबी के लिए क्षमा माँग कर और खिलअत पहनकर देश को लौट जाने के लिए रुखसत को अर्ज करेंगे। लेकिन शिवाजी ने दरबार में आने से कतई इन्कार कर दिया। बहुत कहने-सुनने पर अपने पुत्र शम्भाजी को रामसिंह के साथ भेजा। शाही दरबार का अदब भङ्ग होजाने और शिवाजी की इस दबङ्ग कार्यवाही ने आगरे में तहलका मचा दिया। महाराज बलवन्तसिंह जयसिंह के प्रतिद्वन्द्वी थे। उन्होंने और दूसरे उमरावों ने शिवाजी के विरुद्ध बादशाह के कान भरे। सब बातों पर विचार करके बादशाह ने हुक्म दिया—"खत लिखकर महाराज जयसिंह से पूछा जाए कि उन्होंने क्या कौल-करार करके और क्या वायदे करके और सौगन्ध खाकर आगरे भेजा था। जब तक वहां से जवाब आए, शिवाजी को आगरे के किलेदार राव अन्दाजखां को सोंप दिया जाय।" लेकिन रामसिंह ने इसका विरोध किया और उसने वजीर आमिनखां से कहा—"मेरे पिता के वचन पर शिवाजी आगरे आए हैं, मैं उनकी जान का जामिन हूँ। पहले बादशाह हमको मार डालें और उसके बाद जो जी में आवे, करें।"

यह सुनकर बादशाह ने हुक्म दिया कि शिवाजी को रामसिंह के सुपुर्द कर दिया जाय और उससे मुचलका लिखा लिया जाय कि यदि

शिवाजी भाग जाय या आत्मघात करले तो उसके लिए रामसिंह जवाबदार होगा। परन्तु इतना होने पर भी बादशाह ने शहर कोतवाल सिद्दी फौलादखां को हुक्म दिया कि शिवाजी के डेरे के चारों तरफ तोपें रखवा कर शाही फौजें बैठा दीजाएं और डेरे के अन्दर आमेरी सेना के तीन-चार अफसरों और कछवाही फौजों का पहरा लगा दिया जाय। इस प्रकार शिवाजी को आगरे में कैद कर लिया गया।

४३

ताजमहल का कैदी

आज तो आगरे का ताज विश्व का दर्शनीय स्थान बना हुआ है। पर उन दिनों सिवाय शाही परिवार और बड़े-बड़े उमरावों के कोई ताज में नहीं जा सकता था। न आज जैसी चौड़ी सड़कें और प्रशस्त लॉन उन दिनों ताजमहल के आसपास थे। आगरे से पूर्वी दिशा में एक लम्बा पथरीला मार्ग चला गया था जो क्रमशः ऊँचा होता जाता था। उसके एक ओर एक बड़े बाग की चहारदीवारी थी, जो ऊँची और लम्बी दूर तक चली गई थी। उसके दूसरी ओर नए बने हुए मकानों की एक पंक्ति चली गई थी जिनमें दुहरी महराब बनी हुई थी। इस दीवार के आधी दूर तक पहुँचने पर दाहिनी ओर एक बड़ा फाटक था जो बहुत शानदार था। वह वास्तव में एक बड़ी सराय का फाटक था जो हाल ही में वनकर तैयार हुई थी। इसके सामने ही उस दीवार में एक दूसरा फाटक था जिसे पार करके एक छोटा-सा बाग और एक आलीशान इमारत नजर आती थी। इमारत बहुत सुन्दर थी। इसी में शिवाजी को डेरा दिया गया था।

शिवाजी ने वजीरेआजम जफरखां और दूसरे बड़े-बड़े उमरावों को घूस देकर अपने छुटकारे की सिफारिशें बादशाह से कराईं। पर

बादशाह को बेगम शाइस्ताखां निरन्तर शिवाजी द्वारा सूरत के बन्दरगाह की लूट और अपने पति को घायल करने की याद से उत्तेजित करती रहती थी। उसने कोई सिफारिश नहीं सुनी। शिवाजी ने बादशाह के सामने भी वहुत से कौल-करार लिख भेजे, पर बादशाह ने उन पर भी कान नहीं दिया। अन्ततः शिवाजी अब अपने जीवन से निराश हो गए। दक्षिण में जब आगरे में होने वाली इन दुर्घटनाओं का विवरण जयसिंह ने सुना तो वह बड़ी दुविधा में पड़ गया और उसने अपने पुत्र रामसिंह को बारंबार आदेश दिया कि हम राजपूत हैं और हमारे किए कौल-करार और शिवाजी को दिए आश्वासन झूठे न होने पाएं तथा शिवाजी की जान पर भी कोई खतरा न आने पाए, इसका पूरा ख्याल रखना।

४४

डच गुमाश्ता

उन दिनों आगरे में डचों की एक कोठी थी जिसमें उस समय चार या पांच डच अधिकारी रहते थे। ये लोग बानात, छोटे-छोटे शीशे, सादे और सुनहरी तथा रुपहली लेस, और छोटे-मोटे लोहे के सामान बेचते थे तथा नील खरीद कर अपने देश को भेजा करते थे। उन दिनों आगरे के आसपास नील की बहुत खेती होती थी और डचों के बहुत से एजेन्ट देहातों में घूम-फिर कर नील ख़रीदा करते थे। डचों की एक कोठी बयाना में भी थी जो यहां से सात-आठ मील के अन्तर पर थी। वहां देहातों से खरीदा हुआ नील जमा होता था। जलालपुर और लखनऊ से भी वे लोग नील खरीदते थे। वहां भी उन्होंने एक-एक डिपो बना रखा था जहां भारतीय गुमाश्ते-कारिन्दे रहते थे। उन दिनों आर्मीनियन लोग भी आगरे के आसपास यही धन्धा करते थे और दोनों दलों में खूब व्यापारिक संघर्ष चलता था।

कुछ दिनों से एक ठिगने कद का मजबूत-सा आदमी गुमाश्ता होकर डचों की कोठी में आया है। शहर के एक बड़े सरदार की सिफारिश पर वह वहाल हुआ है। यह अपेक्षाकृत सस्ते भाव में उन्हें नील सप्लाई करता है। आदमी मुस्तैद और सच्चा है तथा आगरे का निवासी नहीं है। उसने इस बार आगरे के देहातों से नील एकत्र करने का ठेका लिया है और उसे तथा उसके आदमियों को डचों ने शाही परवाने अपनी जमानत पर ला दिए हैं तथा वह व्यक्ति अपने आदमियों के साथ यहीं रहता है। उसकी कार्यकुशलता और मुस्तैदी से डच बहुत खुश हैं। उसके आदमी कभी-कभी डचों से आईने, लेस और दूसरी चीजें खरीदकर भी मुफस्सिल में बेचते हैं। गुमाश्ते का नाम मानिक है। कोठी के मैनेजर क्लोरिन साहब हैं। दोनों ही आदमी टूटी-फूटी उर्दू बोल सकते हैं।

मानिक ने कहा—"आपने सुना हुजूर, एक मराठा सरदार बादशाह को सलाम करने आया है। यह वही सरदार है जिसने जहांपनाह के मामू का अंगूठा काट डाला था और सूरत में लूट की थी।"

"ओह! हां, हम उसे जानता है, वो डाकू सरदार है।"

"लेकिन साहेब, रुपया उसके पास खूब है। वह खुले हाथों खर्च करता है। आगरे वालों की तरह कंजूस नहीं है।"

"तो बाबा, तुम क्या चाहते हो?"

"साहेब, हमारे पास जो बड़े-बड़े आइनों और वानात का नया चालान आया है, यह हम उसे अच्छे मुनाफे में बेच सकते हैं। आप एक परवाना शाही मंगा दें तो मैं उस बेवकूफ सरदार से अच्छा नफा कमा सकता हूँ।"

क्लोरिन ने हंसते हुए कहा—"अच्छा, अच्छा, परवाना हम देगा। तुम अक्लमन्द आदमी है। हमारे पास बढ़िया किसिम का मखमल भी है। ज्यादा मुनाफा कमाओगे तो बोनस मिलेगा।"

क्लोरिन साहेब ने शाही परवाना आसानी से ला दिया और मानिक गुमाश्ता बहुत-सा विलायती सामान लेकर शिवाजी के निवास स्थान पर पहुँचा। शिवाजी तानाजी मलूसरे को पहचानते ही खुशी से उछल पड़े। पर तानाजी ने संकेत से उन्हें चुप रहने को कहा और सामान खोल-खोल कर मोल-भाव करने लगे। बीच-बीच में काम की बातें भी होती रहीं।

शिवाजी ने कहा—"बुरे फँसे तानाजी, कहो क्या करना है ?"

"चूहेदानी से निकलना होगा। आप यह बानात का थान देखिए। बहुत बढ़िया है।" उन्होंने थान फैला दिया।

थान को उंगलियों से टटोलते हुए शिवाजी ने कहा—"लेकिन चूहेदानी से कैसे निकलना होगा ?"

"उसका उपाय किया जायगा। पहले जो लोग बाहर हैं, उन्हें यहां से निकालिए।"

"यह आईना भी मुलाहिज़ा फरमाइए।"

आईने को एक ओर धकेलते हुए शिवाजी ने कहा—"आईना रहने दो, तुम्हें जो कहना हो कहो।"

"महाराज, बादशाह से कहिए कि मुझे और मेरे पुत्र को यहाँ रहना ही है तो मेरे सरदारों और सिपाहियों को यहाँ से रवाना कर दें। आशा है, मूर्ख बादशाह खुशी से मंजूर कर लेगा।"

"फिर तो मैं अकेला रह जाऊँगा।"

"महाराज, तानाजी छाया की तरह आपकी सेवा में है। चिन्ता न कीजिए। सिपाहियों के रहते आपके निकलने में बाधा होगी।"

"ठीक है, उसके बाद ?"

"उसके बाद आप बीमार हो जाइए। मुलाकात बन्द कर दीजिए। लाइए, थान के दाम दीजिए।" उन्होंने थान की तह करते हुए अशर्फियों के लिए हाथ फैला दिया। शिवाजी ने अशर्फियाँ तानाजी की

हथेली पर रखते हुए कहा—"रामसिंह से मिलते रहो तथा दरबार में और मित्रों को भी पैदा करो।"

"महाराज जसवन्तसिंह की हम पर कृपा है।"

अशर्फियाँ परखते हुए तानाजी ने कहा और अपना सामान समेट कर चलते बने। बाहर आकर हँसते हुए पहरेदारों की हथेली पर दो अशर्फियाँ रखते हुए उन्होंने कहा—"अमल पानी के लिए रख लो। महाराज से मुनाफ़े का सौदा हुआ है। फिर आऊँगा तो और इनाम दूंगा।"

पहरेदार खुश हो गए। तानाजी वहाँ से नौ-दो ग्यारह हुए।

४५

कांटे से कांटा

अब दो धूर्त कूटनीतिज्ञों की राजनैतिक शतरंजों की चालें चलनी आरम्भ हुईं। औरङ्गजेब जैसा सुभट साहसी योद्धा था, उसका सामना करने वाले वीर तो राजपूतों में थे परन्तु उस जैसे कुटिल धूर्त की धूर्तता से समता करने वाला कोई हिन्दू सरदार न था। शिवाजी ही ऐसे पहले हिन्दू थे जो काँटे से काँटा निकालने में चतुर थे। औरङ्ग-जेब ने शिवाजी को आगरे में बुलाया, अपमान किया और कैद कर लिया। सम्भवतः वह उन्हें मार भी डालता।

कुछ दिन चुप रहने के बाद शिवाजी ने अपने पुत्र शम्भाजी को दरबारेशाही में एक अर्जी देकर कुंवर रामसिंह के साथ भेजा। अर्जी में लिखा था कि बादशाह यदि मुझे आगरे में अभी रोक रखना ही चाहते हैं तो मेरी सेना और सरदारों को वापस देश भेज दिया जाय क्योंकि मैं अब शाही सुरक्षा में हूँ। मुझे सेना की तथा सरदारों की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरे पास इतना खर्च भी नहीं है कि आगरे में उन्हें रख सकूँ। मैं बादशाह को भी खर्च के लिए कष्ट देना नहीं चाहता।

औरङ्गजेब ने शिवाजी की इस प्रार्थना को गनीमत समझा। उसने शिवाजी को असहाय करने के विचार से उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। सेना और सरदारों को महाराष्ट्र लौटने की आज्ञा दे दी गई।

शिवाजी ने अपने मुसलमान जेलर सिद्दी फौलादखाँ से दोस्ती गाँठ ली। प्रतिदिन कोई नया तोहफा उसे भेंट में देते, खूब खुश होकर आगरे की तारीफ करते। उनकी बातचीत का अभिप्राय यही था कि यहाँ मैं वहुत खुश हूँ। दक्षिण के सूखे पहाड़ों में मैं लौटना नहीं चाहता।

फौलादखाँ की रिपोर्ट पर वादशाह भी सन्तुष्ट हो गया। शिवाजी पर से बहुत-सी पाबन्दियाँ हटा ली गईं। पहरे की कड़ाई भी कम हो गई। कुछ दिन बाद शिवाजी ने एक और अर्जी बादशाह को भेजी, उसमें लिखा था कि मुझे अपने स्त्री-बच्चों को आगरे बुलाने की अनुमति दे दी जाय।

इससे वादशाह और भी निश्चिन्त हो गया, परन्तु अर्जी पर कोई हुक्म नहीं दिया। कुछ दिन बाद उन्होंने लिखा—"मैं फकीर होकर किसी तीर्थ में दिन व्यतीत करना चाहता हूँ।" इस पर वादशाह ने हँस कर जवाब दिया—"खयाल अच्छा है, फकीर होकर प्रयाग के किले में रहो। बहुत बड़ा तीर्थ है। वहां मेरा सूबेदार बहादुरखां तुम्हें हिफाजत से रखेगा।"

परन्तु इसके बाद ही शिवाजी बीमार पड़ गए। बीमारी बढ़ती ही गई। शाही हकीम आए, आगरे के नामी-गरामी हकीम आए, दवा-दारू चली मगर रोग को आराम न हुआ। बादशाह को आशा हुई कि यह पहाड़ी चूहा इसी बिल में मर जायगा। परन्तु शिवाजी न मरे, न अच्छे हुए। शिवाजी ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया—शिवाजी मरहठा आगरे में बहुत बीमार हैं। जो कोई उन्हें आरोग्य करेगा, उसे सोने से तोल दिया जायगा।

दूर-दूर के हकीम बड़े-बड़े चोगे पहन कर और लम्बी-लम्बी डाढ़ी

फटकार कर आए, पर रोग अच्छा न हुआ। अन्ततः एक निराला हकीम आया। हकीम की पालकी बड़ी शानदार थी। उसके कहार भी जर्क-बर्क थे। हकीम की सफेद डाढ़ी नाभि तक लटक रही थी, किन्तु वह कद में ठिगना था। उसके एक हाथ में तस्वीर थी। उसने फाटक पर आकर सिद्दी फौलादखाँ से कहा—"अय नेकवख्त, सुना है कोई काफिर इस घर में बीमार है। आराम होने पर वह सोने से हकीम को तोल देगा। काफिर को आराम करना शरअ के खिलाफ है, लेकिन जिस्म के वजन के बराबर सोना भी कुछ मायने रखता है। मसलन ये चार अशर्फियाँ हैं। उन्हें तुम अपनी हथेली पर रखकर देखो और इनके असर से तुम्हारे दिल में फायदा उठाने के खयालात पैदा हों तो उस काफिर के पास जाकर हमारी खूब बढ़ा-चढ़ा कर तारीफ करो और उसे हमारे इलाज के लिए रजामन्द करो। बस, तुम यह खबर लाओगे तो यह मेरी मुट्ठी की चार अशर्फियाँ तुम्हारी हथेली पर और पहुंच जाएंगी।"

आठ अशर्फियाँ देखकर फौलादखाँ पानी-पानी हो गया। उसने कहा—"हकीम साहेब, ये अशर्फियां भी मेरी हथेली पर रखिए और शौक से भीतर जाकर ऐसा इलाज कीजिए कि मर्ज रहे न मरीज।"

हकीम साहेब हँस दिए—"भाई फौलादखाँ, जिन्दादिल आदमी हो। लो ये वाकूती गोलियाँ। आज रात इनकी बहार देखना।"

इतना कह कर शीशी से निकालकर गोलियाँ और अशर्फियाँ हकीम साहेब ने फौलादखाँ की हथेली पर रख दीं। फिर कहा—"अमा, इस काफिर के पास इतना सोना है भी या यूंही बेपर की उड़ाता है।"

"है तो मालदार रईस। खुले दिल से खर्च करता है।"

"तब तो उम्मीद है मेरी आठ अशर्फियाँ मिट्टी में न जाएँगी।" यह कह कर हकीम साहेब भीतर गए।

शिवाजी को उन्होंने घूर-घूर कर देखा। फिर कहा—"काफिर का इलाज मुसलमान पर लाजिम नहीं है। मगर, ए हिन्दू सरदार! क्या

सचमुच तेरे पास इतना सोना है जितना तूने देने का वायदा किया है ?"

शिवाजी हकीम की गुस्ताखी से एकदम नाराज हो उठे। उन्होंने कहा—"सोना है, मगर मैं हिन्दू हूँ, मुसलमान की दवा नहीं खाऊँगा। निकलो बाहर।"

लेकिन हकीम साहेब ने शिवाजी की ओर देखकर कहा—"अय नादान सरदार, मुझ पर लाज़िम है कि मैं तेरी जान बचाऊँ।"

इतना कहकर पास बैठकर उन्होंने शिवाजी की नाड़ी पकड़ ली। शिवाजी कुछ देर चुप रहे। नाड़ी देखकर हकीम ने कहा—"सरदार, तुझे तकलीफ क्या है ?"

"सिर में दर्द रहता है। बदन जलता है।"

"यह तकलीफ बाजवक्त गुस्से की ज्यादती से पैदा होती है, बाजवक्त दिल की खराबी से। कभी ऐसा भी होता है कि वतन की याद से दिल कीध ड़कनें बढ़ जाती हैं जिनका दिमाग पर भी असर होता है।" इतना कहकर उन्होंने दूसरी नब्ज पकड़ी और दिल पर हाथ रखा।

शिवाजी ने सोचा कि यह कम्बख्त क्या मेरे मन की बात समझ गया है। उन्होंने ग़ौर से हकीम साहेब के चेहरे को देखा। फिर कहा—"हकीम साहेब, ऐसा दीखता है कि मैं इस बीमारी में मर जाऊँगा।" इतना कहकर उन्होंने झटका देकर हाथ छुड़ा लिया।

हकीम साहेब डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—"अला-कला-उला-व लाम नून वे। हमारी पुश्तैनी किताब में इस मर्ज का हाल दर्ज है। दिल के पास कुल कुला तुसा या काता हत्तारा रग होती है। उसकी फस्द खोलना होगा।"

"क्या दूसरा कोई इलाज नहीं है ?"

"बेंत से पीटने से भी किसी कदर आराम हो जाता है। दुश्मन की कैद से निकल भागने की जो कैदी तरकीब सोचा करते हैं, उन्हें भी

यह मर्ज अक्सर होते देखा गया है। अब सरदार, क्या तुझे जागते हुए भी ख्वाब आते हैं और तू उन पहाड़ियों और दर्रों को देखता है जिनमें तूने अपना बचपन बिताया है ?"

शिवाजी चोंक पड़े। उन्होंने कहा—"क्या यह भी कोई मर्ज है ?"

"वड़ा भारी मर्ज है। मैं एक दवा देता हूँ। अगर तुम वाकई बीमार हो तो अच्छे हो जाओगे और मक्कर कर रहे हो तो गायब हो जाओगे। अस्तख फाअकन मफलातून। समझा ? ये इल्म की बातें हैं।"

शिवाजी ने झपटकर हकीम की डाढ़ी नोंच ली। डाढ़ी शिवाजी के हाथ में रह गई और सामने हकीमजी के स्थान पर तानाजी का चेहरा निकल आया। शिवाजी हक्के-बक्के होकर तानाजी का मुंह ताकने लगे।

तानाजी ने कहा—"मालीखौलिया भी है। किताब में लिखा है उल-उल्ला-वदजुल्ला।" यह कहकर डाढ़ी छीन कर दीवार की ओर मुंह फेर कर डाढ़ी मुंह पर जमा ली।

शिवाजी चुपचाप पलंग पर पड़ रहे।

हकीम साहब ने फिर पास बैठकर नाड़ी पकड़ ली। उन्होंने कहा—"क्यों महाराज, हकीम से ऐसी बेअदबी ?" इसके बाद वे खिल-खिला कर हंस पड़े।

शिवाजी ने भी हंसकर कहा—"कभी-कभी हकीमों का भी इलाज करना पड़ता है।"

कुछ देर तक दोनों धीरे-धीरे बातचीत करते रहे। फिर बाहर आकर और चार मुहर फौलादखां के हाथ पर रखकर कहा—"मरीज जल्द अच्छा होगा। जरा हमारी तारीफ करना। कल हम फिर आएंगे।"

यह कह कर हकीम साहब तेजी से चले गए।

४६
पलायन

प्रसिद्ध हो गया कि शिवाजी अच्छे हो रहे हैं, पर मुलाकातियों के आने की मनाही है। शिवाजी के अच्छे होने की खुशी में वड़े-बड़े झावे भर कर मिठाइयाँ मन्दिरों, ब्राह्मणों और गरीबों को वांटी जाने लगीं। देवालयों में पूजन हुए। मित्रों ने मुबारकवादियाँ भेजीं। शिवाजी ने वड़े-बड़े अमीरों, मुल्लाओं और मस्जिदों में भी मिठाइयाँ भेजीं। सूफी, मुल्ला, पीर, शाह सभी के यहाँ मिठाई पहुँचने लगी। रोज बड़े-बड़े खोंचे भरकर आते और वाहर जाते थे। प्रत्येक खोंचा तीन हाथ लम्बा होता था। उसे दस बारह आदमी मिलकर उठाते थे। कई दिन यह सिलसिला चलता रहा।"

हकीम साहेब भी बराबर हादी फौलादखां की मुट्ठियां गर्म करते थे। वह बहुत खुश था। एक झाबा भर मिठाई उसके घर भी पहुँच चुकी थी। अब वह ज्यादा देखभाल नहीं करता था। अन्त में एक दिन तानाजी ने आकर कहा—"बस महाराज, आज सूर्यास्त के बाद।"

"क्या हमारे सब सैनिक महाराष्ट्र पहुँच चुके ?"

"जी हां, वहां सब कुछ तैयार है।"

"यहां का इन्तजाम ?"

"सब ठीक है। मथुरा-वृन्दावन से काशी तक हमारे आदमी छद्म वेश में जगह-जगह तैनात आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

हकीम साहेब चले गए और सूर्यास्त होते ही आठ झावे बाहर निकले—एक-एक में शिवाजी व शम्भाजी छिपे थे। वे सकुशल नगर से बाहर निकल गए। तानाजी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ एक निर्जन स्थान में टोकरों को रख कर ढोने वालों को वहाँ से विदा कर

दिया गया। शिवाजी और उनके पुत्र टोकरों से निकलकर द्रुत गति से चुपचाप एक ओर को चल दिए। आगरा से छः मील दूर एक गांव में उनके विश्वासी वीराजी रावजी न्यायाधीश घोड़ों सहित उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जल्दी-जल्दी कुछ सलाह सबने की और दल तुरन्त दो टुकड़ियों में बंट गया। शिवाजी, शम्भाजी, उनके तीन अधिकारी वीराजी रावजी, दत्ता त्रिम्बकराव रघुमित्र ने मथुरा की ओर प्रस्थान किया, बाकी मराठे महाराष्ट्र की ओर चल खड़े हुए।

आगरा में रात भर किसी को सन्देह नहीं हुआ, पहरेदारों ने झरोखे से झांककर हर बार देखा। शिवाजी पलंग पर सो रहे हैं। उनका एक हाथ नीचे लटक रहा है, जिसमें सोने का कंगन पड़ा है। वास्तव में हीराजी फर्जन्द उनके स्थान में सो रहे थे। एक सेवक बैठा उनके पांव दबा रहा था।

एक पहर दिन चढ़ने पर पहरेदारों ने फिर देखा कि आज अभी तक शिवाजी सो रहे हैं। कुछ देर बाद हीराजी फर्जन्द और वह सेवक बाहर आए उन्होंने कहा—"शोर मत करो। हमारे महाराज के सिर में दर्द है, हम हकीम साहेब के यहां जाते हैं।"

जब दो प्रहर दिन चढ़ने पर भी कुछ हलचल नहीं नजर आई और शिवाजी से भेंट करने भी कोई नहीं आया तब पहरेदारों ने भीतर घुसकर देखा कि चिड़िया उड़ गई है। इस वक्त फौलादखां शिवाजी की भंगमिश्रित मिठाई खाकर गहरी नींद में खर्राटे ले रहा था। वह जगाया गया। कैदी के फरार होने की खबर सुनकर हक्का-बक्का हो गया। पहले तो खौफ के मारे उसकी अक्ल चकराने लगी। बाद में वह बादशाह को खबर देने दौड़ा। पर बादशाह तक समाचार पहुंचते-पहुंचते तीसरा पहर हो गया। अब तक शिवाजी को पूरे २८ घण्टे का समय मिल चुका था और वे बिना एक क्षण रुके काशी की ओर उड़े चले जा रहे थे।

वादशाह सुनकर आग बबूला हो गया। इस घटना के कुछ दिन पूर्व ही महाराज जयसिंह की मृत्यु की खबर आगरे आई थी। कुँवर रामसिंह अभी सूतक ही मना रहे थे और हकीकत तो यह थी कि वे एक सप्ताह से शिवाजी से मिले ही न थे। पर बादशाह का सारा गुस्सा रामसिंह पर उतरा। उसने रामसिंह का किले में आना ही बन्द कर दिया और मासिक वेतन भी घटा दिया। हादी फौलादखां को भी शहर के कोतवाल के पद से च्युत कर दिया गया।

४७

मथुरा से काशी

बादशाह ने बहुत दूत चारों ओर दौड़ाए, पर शिवाजी की वह धूल भी न पा सका।

शिवाजी, शम्भाजी, वीराजी रावजी, दत्ता त्र्यम्बक एवं रघुनाथ मराठा—ये पाँचों व्यक्ति द्रुत गति से घोड़ों पर सवार हो निर्विघ्न मथुरा पहुँच गए। वहाँ उनके सहायक साथी प्रथम ही से मुस्तैद थे। तानाजी ने अपने साथियों के साथ अभी छद्म वेश में आगरे ही में रहने का निश्चय किया।

मथुरा में मोराजी पन्त की ससुराल थी। वहाँ उनके साले कृष्णाजी रहते थे। शिवाजी को मथुरा पहुँचने में छः घण्टे लगे। वे सब कृष्णाजी के घर सकुशल पहुँच गए। इस समय ४०-५० आदमी यहाँ और एकत्र थे। वहाँ शिवाजी ने डाढ़ी मुंड़ाई, वस्त्र उतार डाले और शरीर पर राख मलकर निहंग साधुओं का वेश बनाया। कुछ जवाहरात पोली छड़ियों में छिपाए, तथा अशर्फियाँ गुदड़ी में सीं लीं और प्रयाग की ओर प्रस्थान किया। इस समय शिवाजी ने बड़ी चतुराई से अपने साथ केवल दो विश्वस्त सहचर वीराजी रावजी पन्त और रघुनाथ

मराठा को साथ लिया। शम्भाजी को कृष्णजी विश्वनाथ के घर छोड़ा। शेष सहचर वस्त्रों में अपने शस्त्र छिपाए कुछ घोड़ों पर कुछ पैदल, कोई साधु, कोई वैरागी, कोई व्यापारी बन कर उनकी मण्डली से आगे-पीछे उनकी सुरक्षा की दृष्टि से छिप-छिपकर चले। शेष मराठों को सीधा महाराष्ट्र शीघ्र से शीघ्र पहुँचने का शिवाजी ने आदेश दिया।

तानाजी ने अपने सशस्त्र सैनिक आगरा और मथुरा के मार्ग पर जङ्गलों में दिपा दिए। उन्हें आदेश था कि यदि मुगल सैनिक-हरकारा, जो कोई भी इस मार्ग पर आता-जाता देखा जाय, काट डाला जाय। स्वयं तानाजी आगरे में अपने गुप्तचरों के साथ रहकर बादशाह की गतिविधि देखने लगे।

आकाश में बादल छाए हुए थे। गहरी अंधेरी रात थी। कुछ देर पूर्व वर्षा होकर चुकी थी। अब ठण्डी हवा बह रही थी। तीनों छद्मवेशी साधु चुपचाप तेजी से प्रयाग की राह चल रहे थे। अभी मथुरा से कुछ ही फासले पर पहुँचे थे कि सहसा उन्हें घोड़ों की टाप सुनाई दी। शिवाजी चौकन्ने हो गये। उन्होंने सहसा हाथों का चीमटा जोरों से पकड़ लिया। उन्होंने छिपने की चेष्टा की, परन्तु यह सम्भव नहीं रहा। सवारों ने उन्हें देख लिया था। निरुपाय शिवाजी और उनके साथियों ने चिमटा बजा-बजाकर 'हरेराम हरेराम हरे हरे' गाना आरम्भ किया।

सवार दो थे। वे सशस्त्र थे। उन्होंने कड़क कर कहा—"कौन हो तुम ?'

"गोसाँई हैं। मथुरा से आ रहे हैं बाबा, चित्रकूट जाने का संकल्प है।"

सवार ने डपट कर कहा—"हम आगरे जा रहे हैं पर रास्ता भूल गए हैं। आगे-आगे चलकर रास्ता बताओ।"

शिवाजी ने कनखियों से अपने साथी रघुनाथ की ओर देखा।

उसने कसकर एक चिमटा एक सवार के सिर पर मारा। सवार चीखकर जमीन पर आ गिरा। दूसरे सवार ने तलवार सूतकर शिवाजी पर वार किया। पर शिवाजी उछलकर दूर जा खड़े हुए। सवार तलवार हवा में घुमाता हुआ घोड़ा दौड़ाकर शिवाजी पर आ पड़ा। घोड़े की झपट से शिवाजी गिर गए। मुगल सवार ने उनका सिर काट लेने को तलवार हवा में ऊँची की, तभी एक तीर उसके कलेजे को पार कर गया। सवार घूमकर धरती पर आ गिरा। इसी समय एक मराठा वीर ने कहीं से आकर तलवार से दोनों का सिर काट लिया।

शिवाजी ने कहा—"तुम्हारा नाम क्या है, वीर ?"

"मैं वेंकटराव हूँ, पृथ्वीनाथ।"

"तुम्हारा नाम याद रखूंगा।"

"महाराज, अभी आप इन म्लेच्छों के घोड़े लेकर रातों रात कूच करें। तीसरा मेरा घोड़ा ले लें। यहाँ पाँच मील तक मेरा पहरा है। जङ्गल निरापद है। पर आप जितनी जल्दी दूर निकल जाँय, उतना ही उत्तम है।"

शिवाजी ने स्वीकार किया। तीनों साधु घोड़ों पर चढ़कर वायु वेग से उड़ चले।

अब वे रातों रात चलते। दिन में जङ्गलों, पर्वत कन्दराओं या नदी के कछार में छिपे पड़े रहते। प्रयाग तक का मार्ग उन्होंने सकुशल समाप्त कर लिया। प्रयाग के निकट आकर उन्होंने घोड़ों को जङ्गल में छोड़ दिया। और तीनों अनोखे साधु चिमटा बजाते, रामधुन गाते प्रयाग में प्रविष्ट हुए। परन्तु प्रयाग में उन्हें बड़े कठिन प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ा। बादशाही हुक्म यहाँ आ चुका था और आते-जाते लोगों पर कड़ी नजर रखी जाती थी। प्रयाग का किलेदार सूबेदार बहादुरखाँ बड़ा ही सख्त आदमी था। उसने सैकड़ों सैनिकों को राह - घाट पर शिवाजी की तलाश में लगा दिया था।

परन्तु शिवाजी ने बड़ी प्रत्युत्पन्नमति और चतुराई से काम लिया। दो दिन प्रयाग में ठहरकर उन्होंने किलेदार की गतिविधि को देखा और अवसर पाकर साधुओं के एक अखाड़े के साथ वहां से चल दिए। बनारस में वहां के फौजदार अली कुली ने उन्हें सन्देह में गिरफ्तार कर लिया। शिवाजी ने आधीरात को उससे भेंट करके कहा—"शिवाजी ही हूँ, लेकिन तुम मुझे चले जाने दो तो यह एक लाख का हीरा नजर करता हूँ। दकन पहुँचकर एक लाख रुपया और दूँगा।"

उस लालची ने हीरा लेकर उन्हें छोड़ दिया। वहां से छुटकारा पाते ही वे गया, विहार, पटना और चांदा होते हुए नदी नाले पर्वतों और जंगलों की खाक छानते अन्ततः दक्षिण जा पहुँचे।

४८

माता और पुत्र

राजगढ़ के महलों में जीजाबाई अत्यन्त व्याकुलता से दिन बिता रही थीं। शिवाजी को दक्षिण से गए अब नौ मास व्यतीत हो रहे थे। वे सवा तीन मास आगरे में कैद रहे। वहां से पलायन करने और काशी तक पहुँचने के समाचार भी मिले थे, परन्तु उसके बाद कोई समाचार न मिला था।

प्रातःकाल का समय था और जीजाबाई भवानी के मन्दिर में पूजा कर रही थीं। मोरेश्वर उनके निकट हाजिर थे। जीजाबाई हाथ जोड़े देवी से अरदास कर रही थीं कि हे देवी, मेरा पुत्र कहाँ है, उसे मेरी गोद में लाओ। मोरेश्वर कह रहे थे कि मुझे आगरे से विश्वस्त समाचार मिले हैं कि शत्रुओं में प्रसन्नता के चिह्न नहीं हैं। यह मंगल सूचक है। आप चिन्ता न करें। अभी ये बातें हो ही रही थीं कि दो वैरागियों ने आकर मन्दिर के द्वार पर मत्था टेका। जीजाबाई उन्हें

प्रणाम करने उठीं तो एक ने तो 'कल्याणमस्तु, आशा पूर्ण होय' कह कर आशीर्वाद दिया; पर दूसरा दौड़ कर जीजाबाई के चरणों में लिपट गया। जीजाबाई एकदम पीछे हट गईं। उन्होंने कहा—"यह क्या किया, वैरागी होकर गृहस्थ के चरण पकड़ लिए।" इसी समय वैरागी के सिर पर उनकी दृष्टि पड़ी।

"अरे मेरा शिव्वा है" कह कर उन्होंने उसे छाती से लगा लिया। राजगढ़ में हलचल मच गई। 'महाराज आ गए, महाराज आ गए' की धूम मच गई। क्षण भर ही में तोपें गरज उठीं और मराठा सरदार आ-आकर महाराज को मुजरा करने लगे।

अभी तक शिवाजी वैरागी के वेश में खड़े थे। जीजाबाई ने कहा—"अरे शिव्वा, तू अभी तक मेरे आगे वैरागी के वेश में खड़ा है। मोरेश्वर, जल्दी करो, अपने महाराज को पवित्र तीर्थोदक से स्नान करा-कर राजसी ठाठ से सज्जित करो। राज्य भर में अन्न, वस्त्र, स्वर्ण आदि गरीबों और ब्राह्मणों को बांटा जाय।" परन्तु शिवाजी अटल चट्टान की भांति चुपचाप खड़े थे। उनके नेत्रों में गत पूरे नौ मास का कठिन संघर्ष-मय जीवन छा रहा था। भूत भविष्य के बड़े-बड़े रेखाचित्र उनके मस्तिष्क में उभर रहे थे, कभी उनकी आंखों में अपनी विपत्ति और असहायावस्था के भाव आने पर जल थिरक आता था और कभी बदले की भावना से आँखों में आग निकलने लगती थी।

इसी समय अणाजी दत्ता ने आकर हंसते हुए शिवाजी के चरण पकड़ कर कहा—"मत्था टेकूं वैरागी बाबा।"

"धुत्, ब्राह्मण होकर ऐसा काम?"

"जय, जय, महाराज, जय जय छत्रपति।"

दशों दिशाएँ जयजयकार से गूंज उठीं।

सब ने नजर उठाकर देखा। तानाजी मलूसरे हंसते हुए जय-जयकार करते हुए चले आ रहे हैं।

शिवाजी ने आगे बढ़ कर उन्हें छाती से लगाया और पूछा—"कहो, आगरे में कपटी आलमगीर पर मेरे पीछें क्या बीती ?"

तानाजी ने हंसते-हंसते कहा—"कुछ न पूछिए, महाराज। सारे आगरे में शोर मच गया कि शिवाजी राजे हवाई शरीर रखते हैं, आसमान में उड़ सकते हैं। ५० मील की छलांग मार सकते हैं। बादशाह की नींद हराम हो गई। उसे भय हुआ कहीं शाइस्ताखां की तरह या अफजलखां की तरह आप ऊपर हवा में से न टूट पड़ें। उसने अपने शयनागार का पहरा कड़ा कर दिया। मैं तो दरबार में यह चर्चा होते छोड़ आया हूँ कि बादशाह सोच और चिन्ता से बीमार हो गया है।"

"भगवती प्रसन्न हो, वह अच्छा हो जाय और जब मरे मेरी तलवार से मरे।" शिवाजी ने गम्भीर वाणी से कहा।

एक बार फिर जयजयकार हुआ और उन्होंने मोरोपन्त से पूछा—"कहिए, यहां के क्या हाल चाल हैं ?"

"महाराज, जब तक आप बन्धन में रहे, हम बेबस बैठे रहे। पर आपकी मुक्ति का समाचार सुनकर हमने अपनी-अपनी हलचलें आरम्भ कर दी हैं। गोलकुण्डा और बीजापुर मिल गए हैं। उन्होंने ६,००० घुड़सवार तथा २५,००० पैदल सेना सहायता को भेजी। हम लोग भी भीतर ही भीतर उनके भले में रहे। दक्षिणी किलेदारों ने अपने मातहत घुड़सवारों द्वारा मुगल सेना की दुर्गति कर डाली है। लकड़ी, अनाज, घास, और पानी चारा उन्हें कोई भी वस्तु नहीं मिलती। इधर अकाल भी पड़ गया, उपज हुई ही नहीं। अब शत्रु को पानी का भी कष्ट है।"

"यही कारण हुआ जयसिंह की विफलता का।"

"हां महाराज, उसके पास न धन रहा न सेना, न रसद और न पानी। उसने लोहगढ़, सिंहगढ़, पुरन्दर, माहुली और पन्हाला दुर्ग में तो सेना, रसद और युद्ध सामग्री रखी। बाकी सब किलों के दरवाजे और परकोटे तोड़ कर छोड़ दिया। उन पर मैंने अधिकार कर लिया। सबकी मरम्मत

भी हो चुकी। उनमें सब युद्ध सज्जाएँ तैयार हैं। अपने दुर्गों में अब केवल सिंहगढ़ और पन्हाला दुर्ग ही रह गया है।"

"धन्य मोरेश्वर, दो ही मास में वे भी अपने हो जाएँगे। चिन्ता न करो। मैंने उस समय जो जयसिंह से युद्ध नहीं किया, अच्छा ही किया। उस समय जयसिंह के पास ८०,००० सेना थी। युद्ध होता तो बड़ी क्षति होती तथा परिणाम अनिश्चित था। ठीक हुआ काँटे से काँटा निकला। शत्रुदल बिखर गया। अपना दल अक्षत रहा। राज भी कम न हुआ, अब देखो भवानी मुझ दास से क्या कराती है।"

"महाराज, तीनों शाहियाँ खत्म हुई रखी हैं। अब पधारिए, राजवेश धारण कीजिए।"

४६

दक्षिण लौटने पर

आगरा से दक्षिण लौटने पर शिवाजी ने देखा कि दक्षिणी भारत की सारी राजनैतिक परिस्थिति ही बदल गई है और मराठों के विरुद्ध जयसिंह ने पहले जो सफलताएँ प्राप्त की थीं, वे अब सम्भव नहीं हैं। सितम्बर सन् १६६६ में आगरे की कैद से छूटकर शिवाजी दक्षिण पहुँचे और उसके ४ महीने बाद ही जयसिंह को वापस दिल्ली बुला लिया गया। महाराज जयसिंह दक्षिण की सूबेदारी का शासन-भार शाहजादा मुअज्जम को सौंपकर खिन्न-हृदय दिल्ली लौटा। परन्तु वृद्ध महाराज जसवन्तसिंह जिनका सारा जीवन कठिन संघर्ष में व्यतीत हुआ था अब घरेलू चिन्ताओं से व्यथित, निराश और जर्जरित हो चुके थे; तथा बीजापुर की पिछली लड़ाई में विफल होने के कारण बादशाह ने जिनका तिरस्कार किया था, वे वृद्ध व्याघ्र मिर्जा राजा जयसिंह जीवित अपनी जन्मभूमि तक नहीं पहुंचे, मार्ग ही में २८ अगस्त को बुरहानपुर में उनका शरीरांत हो गया।

आलसी, विलासी और शक्तिहीन मुअज्जम से शिवाजी को किसी प्रकार का भय न था। उसके साथ जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह भी शिवाजी के भीतर ही भीतर मित्र थे। उधर रुहेला सेनापति दिलेरखां वृद्धावस्था में बहुत घमण्डी हो गया था। शाहजादा मुअज्जम के आदेशों की वह तनिक भी परवाह न करता था और महाराज जसवन्तसिंह का खुलेआम अपमान करता था। इस प्रकार मुगलों का यह दक्षिणी पड़ाव आपसी ईर्ष्या-द्वेष और गृहयुद्ध का अखाड़ा बना हुआ था। यही कारण था कि आगरे से लौटने के बाद तीन साल तक शिवाजी के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हुई। शिवाजी भी अपनी दूरदर्शिता के कारण झगड़े-टंटे के सब अवसरों को टालते रहे। और अपनी पूरी शक्ति भविष्य की तैयारियों में लगा दी। उन्होंने अपने राज्य के शासन-प्रबन्ध को सुव्यवस्थित किया, किलों की मरम्मत की, आवश्यक युद्ध सामग्री एकत्र की और पश्चिमी तट पर बीजापुर राज्य और जंजीरा के सिद्धियों को पराजित किया और अपनी सीमाएँ सुदृढ़ कीं। बीच-बीच में वे महाराज जसवन्तसिंह की लल्ली-पत्ती करते रहे और निरन्तर यही कहते रहे कि मेरे बुजुर्ग मिर्जा राजा मर चुके हैं, अब आप ही मेरे एकमात्र हितैषी हैं। मुगल दरबार से मुझे क्षमा करा दीजिए तो मैं सब प्रकार की शाही सेवा करने को तैयार हूँ। शिवाजी की इस विनय से सन्तुष्ट होकर मुअज्जम और जसवन्तसिंह ने शिवाजी के लिए औरंगजेब से सिफारिश की। अन्त में सन् १६६८ के आरम्भ में एक संधि हुई जो दो वर्षों तक कायम रही। इस संधि के अनुसार औरंगजेब ने शिवाजी को राजा कहना स्वीकार कर लिया और मराठों द्वारा समर्पित किलों में से चाकण का किला उन्हें लौटा दिया। इसी संधि के अनुसार शिवाजी ने नीराजी रावजी की अधीनता में एक मराठा सेना औरंगाबाद भेज दी। शंभुजी को पंचहजारी मनसब दे दिया गया और मनसब की जागीरें बरार में दे दी गईं। परन्तु, हकी-

कत यह थी कि मुगल और शिवाजी के बीच की यह सन्धि एक अल्प-कालीन युद्ध-विराम मात्र थी क्योंकि औरंगजेब को इस समय सदैव अपने बेटों से विद्रोह का खतरा बना रहता था और न जाने क्यों उसके शक्की मिज़ाज में यह विश्वास घर करता जाता था कि कहीं मुअज्जम शिवाजी से मिलकर विद्रोह का झंडा खड़ा न कर दे। अन्त में उसने शिवाजी को पकड़ने या उसके लड़के को कैद करके धरोहर के रूप में अपने अधिकार में रखने का एक गुप्त षड़यन्त्र करना आरम्भ किया। इसी समय एक ऐसी घटना घटी जो चिनगारी का काम कर गई। शाही दरबार में जाने के लिए शिवाजी को जो एक लाख रुपये दिये गये थे, उनकी वसूली के सिलसिले में बरार में दी गई शिवाजी की नई जागीर का एक अंश कुर्क कर लिया गया। बस, शिवाजी ने एक-बारगी ही मुगल साम्राज्य पर धावे बोल दिए, उनके दल के दल दूर-दूर तक धावा करके मुगल प्रदेश को लूटने लगे। पुरन्दर की सन्धि के समय औरङ्गजेब को जो किले सौंपे गए थे, वे एक-एक करके वापस ले लिए। साथ ही सन् १६६० के अन्त तक शिवाजी ने अहमदनगर, जुन्नर और परेण्डा के आसपास के ५१ गाँवों को भी लूट लिया।

इस समय शाहजादा मुअज्जम और दिलेरखाँ का पारस्परिक विरोध बहुत बढ़ गया था। स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई कि दिलेरखाँ को विश्वास हो गया कि यदि वह मुअज्जम की सेवा में उपस्थित हुआ तो या तो वह कैद कर लिया जायगा या मार दिया जायगा। उसकी अवज्ञाओं से क्रुद्ध होकर और जसवन्तसिंह के बढ़ावे में आकर मुअज्जम ने औरङ्गजेब से शिकायत की कि दिलेरखाँ विद्रोही हो गया है। उधर दिलेरखाँ ने औरङ्गजेब को सूचना दी कि शाहजादा मुअज्जम और जसवन्तसिंह शिवाजी से मिलकर शाही तख्त के लिए खटपट कर रहे हैं। इस समय मुअज्जम अपनी मनमानी कर रहा था और शाही

आज्ञाओं का भी पालन नहीं करता था, जिससे औरङ्गजेब अत्यन्त चिन्तित और शंकित हो गया था। मुगल दरबार आगरे में यह आम बात थी कि मुअज्जम शिवाजी से मिलकर बादशाह को तख्त से उतारने की साठ-गाँठ में है। इसी से शेर होकर शिवाजी के मुगल प्रदेशों पर आक्रमण सफल होते जा रहे हैं और शाहजादा मुअज्जम चुपचाप बैठा देख रहा है।

इधर दिलेरखाँ ने जब अपनी स्थिति को असहनीय देखा और अपने मार डाले जाने या कैद किए जाने का उसे अंदेशा हो गया तो उसने दक्षिण से भाग चलने में ही अपनी कुशल समझी। उसने गुजरात के सूबेदार बहादुरखाँ से एक खत बादशाह को लिखवाया जिसमें यह सिफारिश की गई थी कि दिलेरखाँ को उसकी अधीनता में काठियावाड़ का फौजदार नियुक्त किया जाय। बादशाह ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया और दिलेरखाँ ने दक्षिण से कूच कर दिया।

सितम्बर सन् १६७० के अन्त में दिलेरखाँ ने दक्षिण छोड़ा और इसके तत्काल बाद २०,००० घुड़सवार और इतने ही पैदलों को लेकर शिवाजी ने सूरत को जा घेरा। अब यह वह लुटेरा शिवाजी न था जो पहले चोर की तरह आया था और लूटमार करके भाग गया था। अब उसकी कमान में ३०,००० मराठों की अजेय सेना थी और वह शाहजादे की छाती पर पैर रखकर सूरत पहुँचा था। ३ अक्तूबर को शिवाजी ने नगर पर धावा बोल दिया। शिवाजी के सूरत पर पहले धावे से सचेत होकर औरङ्गजेब ने शहर के चारों ओर शहरपनाह बना दी थी। परन्तु इससे कुछ लाभ न हुआ। नगररक्षक थोड़ी देर तक ही रक्षा कर सके अंत में वे किले की ओर भाग चले। शिवाजी ने आनन-फानन शहर को अपने अधिकार में कर लिया। केवल अंग्रेज, डच व फ्रांसीसी व्यापारियों की कोठियाँ, तुर्की व ईरानी व्यापारियों की बड़ी नई सराय और अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों की कोठी के बीच में स्थित तातार सराय जिसमें मक्का

की तीर्थयात्रा से हाल ही में लौटा हुआ काशगर का सिंहासन-च्युत बादशाह ठहरा हुआ था, शिवाजी के आक्रमण से बच रहे। फ्राँसीसियों ने बहुमूल्य उपहार देकर मराठों को प्रसन्न कर लिया। अंग्रेजों व तातारों ने दिन भर बहादुरी से मराठों का सामना किया। अन्त में तातार लोग अपने बादशाह को लेकर किले में भाग गए और उनकी सारी बहुमूल्य सामग्री मराठों ने लूट ली। अन्त में तीन दिन तक लूटमार तथा आग लगाने के काण्ड करके तथा आधे शहर को जलाकर राख करके और ६६ लाख रुपया नकद लूटकर शिवाजी सूरत से लौटे। भारत के सबसे धनवान बन्दरगाह का सारा धन चौपट हो गया और शिवाजी और मराठों का आतंक ऐसा फैला कि जब-जब मराठों के आने की झूठी-सच्ची अफवाहें नगर में फैलतीं, सूरत नगर भय से आतंकित हो उठता।

व्यापारी लोग हड़बड़ा कर जल्द-जल्दी अपना सामान जहाजों पर रखाते, नागरिक गाँवों को भाग जाते और यूरोपियन व्यापारी सुआली पहुँच कर आश्रय लेते थे। इस प्रकार मराठों के आक्रमण और लूट के आतंक का ऐसा प्रभाव हुआ कि उनके भय से सूरत का सारा विदेशी व्यापार पूर्णतया लुप्त हो गया।

५०

मुस्लिम धर्मानुशासन

इस्लामी धार्मिक असूलों के अनुसार प्रत्येक मुसलमानी राज्य की नीति धर्मप्रधान होनी चाहिए। सच्चा बादशाह और अधिकारी एकमात्र खुदाताला है। और बादशाह खुदा का प्रतिनिधि। इस हिसाब से बादशाह का यह कर्तव्य है कि वह ईश्वरीय नियमों का सब प्रजा से पालन कराए। इस नीति का दूसरा व्यावहारिक स्वरूप यह बन जाता है कि

सच्चे इस्लामधर्म को राज्य में फैलाए और राजकीय शासन द्वारा प्रजा से उसका पालन कराए। इस प्रकार के राज्य में इस्लाम में अविश्वास करना नियमानुसार राज-द्रोह समझा जाता है और यह मान लिया जाता है कि विधर्मी व्यक्ति ने ईश्वर के संसारी पार्थिव प्रतिनिधि बादशाह की सत्ता का अपमान करके ईश्वर के प्रतिद्वन्द्वी झूठे देवी-देवताओं की पूजा की। इसलिए वह दण्ड का अधिकारी है। ऐसी हालत में कट्टर इस्लाम के अतिरिक्त किसी अन्य जाति या धर्म के प्रति किसी प्रकार की दया या उदारता प्रकट करना अनुचित माना जाता है। इस्लामी धर्म के अनुसार ईश्वर के साथ अन्य देवताओं पर विश्वास रखना भी कुफ़ है। इसलिए इस्लामी धर्म के अनुसार सच्चे इस्लाम धर्म के अनुयायी का जिहाद करना एक प्रथम और महत्वपूर्ण कर्तव्य बन जाता है। जिहाद के सम्बन्ध में सच्चे मुसलमानों के लिए ये आदेश हैं कि जब पवित्र माह समाप्त हो जाए तब उन सब आदमियों को जो ईश्वर के साथ दूसरे देवताओं के नाम जोड़ते और पूजते हैं, जहाँ मिलें, मार डालो। पर यदि वे धर्म परिवर्तित कर लें तो उन्हें अपनी राह जाने दो और उनसे कहो कि वे तोबा करें और यदि वे फिर विधर्मी हो जाएं तो उनसे लड़ो। इस्लामी आदेश यह भी है कि काफिरों के देश में उस समय तक युद्ध करो जब तक कि वे इस्लामी राज्य के दायरे में पूर्ण रूप से न आ जाएं।

इन धार्मिक एवं राजनैतिक सिद्धान्तों के अनुसार ऐसी विजय के बाद उस देश के काफिरों की सारी आबादी मुसलमानों की गुलाम बन जाती है। सम्पूर्ण मनुष्यों को इस्लाम के झण्डे के नीचे ले आना और उन्हें मुस्लिम बना कर उनके हर प्रकार के धार्मिक मतभेदों को मिटा देना ही इस्लामी राज्य का आदर्श है। यति इस्लामी राज्य के अन्तर्गत कोई काफिर रहने दिया जाय तो वह केवल अपवाद ही माना जाना चाहिए परन्तु ऐसी परिस्थिति देर तक नहीं रह सकती, कुछ काल तक

ही अस्थायी रूप से रह सकती है। ऐसे विधर्मी को इस्लामी धर्म के नियमानुसार सब राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाना चाहिए जिससे वह शीघ्र ही उस अनोखी इस्लामी आध्यात्मिक ज्योति को प्राप्त कर ले और उसका नाम एक सच्चे मुसलमान की सूची में लिख दिया जाय।

इस धार्मिक दृष्टिकोण से कोई भी अन्य धर्मावलम्बी मुसलमानी राज्य का नागरिक कदापि नहीं बन सकता। वह उस राज्य के दलित समाज का एक ऐसा सदस्य बन जाता है जिसकी स्थिति लगभग गुलामों जैसी होती है। और यह मान लिया जाता है कि ईश्वर ने जो उसे जीवन और धन दिया है, जिसका कि वह उपभोग कर रहा है, और इसके लिए इस्लामी शासक उसे जो प्राणदान देते हैं उसके बदले में उसे अनेक राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों का त्याग करना अनिवार्य हो जाता है और जो शासक उसे विधर्मी होने पर भी जीवित रहने देता है उसके इस उपकार के बदले उसे एक कर देना उसका कर्तव्य हो जाता है जिसे 'जजिया' कहते हैं। इसके अतिरिक्त यदि वह जमीन का मालिक है तो उस पर उसे खिराज देना चाहिए और सेना के खर्च के लिए भी अलग कर देना चाहिए। यदि वह स्वयं सेना में भरती होना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकता। विधर्मी को 'जिम्मी' कहते हैं। कोई भी जिम्मी किसी प्रकार का बढ़िया और महीन कपड़ा नहीं पहन सकता, न वह घोड़े पर चढ़ सकता है, न वह शस्त्र धारण कर सकता है। प्रत्येक मुसलमान के साथ उसे सम्मानपूर्वक पूरी दीनता दिखाते हुए दरिद्र वेश में रहना चाहिए, और अपने आचरणों से यह प्रमाणित करना चाहिए कि वह विधर्मी और विजित जाति का आदमी है।

कोई भी जिम्मी किसी भी हालत में मुसलमानी राज्य का नागरिक नहीं है। वह अपनी धार्मिक क्रियाओं, पूजा-पाठ आदि के सम्बन्ध में सार्वजनिक रूप में न तो बात ही कर सकता है और न प्रदर्शन।

अदालतों में गवाही देने, फौजदारी कानून, विवाह आदि के मामलों में उस पर अनेक अयोग्यताएँ लादी गई हैं। उसे अदालत में गवाही देने का अधिकार नहीं है।

एक तरफ तो विधर्मियों के लिए ऐसे कठोर और अपमानजनक नियम थे, दूसरी ओर धर्म छोड़ कर इस्लाम स्वीकार कर लेने वालों को धन अथवा नौकरी दिए जाने के प्रलोभन भी थे।

अरब के विजेताओं ने सर्वत्र सहनशीलता के नियमों का पालन किया था किन्तु बाद में तुर्कों के शासन काल में विधर्मियों के लिए यह कठोर नियम अपनाए गए और इस प्रकार जिहाद में काफिरों को मारना और उनके धार्मिक स्थानों को नष्ट करना पुण्य कार्य माना गया। इससे मुसलमानों में एक ऐसी मनोवृत्ति पैदा हो गई कि उनके स्वभाव में लूटमार और नरहत्या एक धार्मिक कार्य और ईश्वरीय आदेश की भांति माना जाने लगा। यहाँ तक कि वासनाओं को वश में करने और इन्द्रियों को दमन करने की अपेक्षा काफिर को कत्ल करना और उसका धन लूट लेना एक मुसलमान के लिए स्वर्ग प्राप्ति का कारण बन गया। यही कारण था कि इस्लाम के आदर्श अपने अनुयायियों के सच्चे हितों की उन्नति में सहायक नहीं हुए। इस्लाम की इस नीति के कारण सम्पूर्ण इस्लामी संस्था एक ऐसा संगठन बन गई जिसका कार्य केवल युद्ध था।

मुसलमान नए-नए स्थानों को जीतने और लूटने की मनोवृत्ति को मन में पनपाते रहे। भारत में जब मुसलमानी राज्य विस्तार की चरम सीमा को पहुँच गया और आसाम और चटगांव की पहाड़ियों से जा टकराया तो उसने दक्षिण की ओर रुख करके महाराष्ट्र की सूखी चट्टानों में अपनी राह बनाने की निष्फल चेष्टा की। परन्तु राज्य का कोई स्थायी आर्थिक आधार न था। इन मुस्लिम नेताओं और विजे-ताओं में योग्यता भी न थी कि वे निरन्तर चलने वाले युद्धों में टिक भी सकें

और शान्तिकालीन उद्योग-धन्धों और कला-कौशल को बढ़ावा दे सकें।

इस्लामी राज्य की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों को एक विशेषाधिकार प्राप्त जाति का स्थान मिल गया। अतः इस अधिकारी वर्ग का भरणपोषण राज्य अधिकारी द्वारा ही होता था। इसलिए शांतिकालीन समय में वे आलसी होते चले गए। जीवन के क्षेत्र में उनमें अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति न रही। राज्य के ऊंचे-ऊंचे ओहदों पर बैठना उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। उन्हें न योग्यता के प्रदर्शन करने की आवश्यकता थी, न शौर्य की। इस प्रकार मुस्लिम साम्राज्य एक ऐसी जाति के हाथ में रह गया जो अयोग्य और आलसी थी और इस कारण मुस्लिम राज्यों की जड़ खोखली होती चली गई। धन से आलस्य और विलासप्रियता बढ़ी जो इस समूची जाति को दुर्व्यसन और कुकर्मों की ओर ले गई और जब साम्राज्य की समृद्धि का अन्त हुआ तो एक बार ही सर्वनाश वज्र की भांति उन पर आ टूटा।

हिन्दू प्रजा, जो उनके आश्रित थी और जिसके साथ सब प्रकार के दुर्व्यवहार किए जा रहे थे, का उपयोग राज्य की उन्नति और विकास के लिए न किया जा सका। उन पर खुलेआम कानून के द्वारा या हाकिमों की स्वेच्छाचारिता के कारण दबाव डालकर उनके विकास को रोक दिया गया था। वे पशुओं की भांति किसी प्रकार जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे शासकों की चाकरी करते और पैसा कमा कर उन्हें सोंप देते। अपनी गाढ़ी कमाई में से भी अपने लिए बचा रखने का उनको अधिकार न था। यही कारण था कि मुस्लिम काल में उनका शारीरिक और मानसिक विकास न हुआ। ज्ञान और चिन्तन के क्षेत्र में भी वे पिछड़ गए। जिन मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं के साथ सहिष्णुता की नीति वरती, उन्हें धन और ऊचे पद दिए, उनके साहित्य और कला को उत्साहित किया, उनके राज्य समृद्धिपूर्ण और शक्तिशाली हुए।

परन्तु यह सबकुछ अपवाद के रूप में ही हुआ और इस प्रकार की सारी कार्यवाही मुस्लिम दृष्टि से एक निन्दनीय आचरण था और यह समझा जाता था कि शासक ने अपने प्रधान शासक की अवहेलना की है। सच्चे मुस्लिम शासक की सारी सत्ता मुस्लिम सेना पर आधारित थी। मुस्लिम राज्य के आधारभूत साधनों की दृष्टि से गैर-मुसलमानों की वृद्धि और उन्नति और निरन्तर अस्तित्व बना रहना सर्वथा असंगत था। ऐसे राजनैतिक समाज में एक अनिश्चित और अस्थायी भावना उत्पन्न होती गई तथा शासक और शासितों के बीच परम्परागत विरोधी भावना निरन्तर बनी रही जिसका परिणाम यह हुआ कि विधर्मी मुस्लिम राज्य का अन्त में विनाश हुआ और यह कार्य औरंगजेब के शासनकाल में हुआ।

५१

औरंगजेब की कट्टर राजनीति

औरंगजेब एक धूर्त और कुटिल राजनीतिज्ञ था। अपने राज्य के पहले ही वर्ष में उसने नए मन्दिरों के निर्माण का निषेध कर दिया। बाद में तो उसने अनेक मन्दिरों को भ्रष्ट किया, नष्ट किया और उनके स्थानों पर मस्जिदें बनवाईं। उसने कटक से लेकर मेदिनीपुर तक उड़ीसा के स्थानीय हाकिम को सारे मन्दिर गिरवा देने की आज्ञा दी और हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर रोक लगवाई। उसने गुजरात का सोमनाथ का मन्दिर, काशी का विश्वनाथ का मन्दिर, मथुरा का केशव-राय का मन्दिर ढा दिए, जिन्हें सारे भारत की जनता आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। उसने मथुरा शहर का नाम बदलकर इस्लामा-बाद रख दिया और साम्राज्य के सब सूबों, परगनों, शहरों और महत्व-

पूर्ण स्थानों में जनता के सदाचार की देखभाल करने के लिए मौहतसिव नियुक्त किए जिनका वास्तविक काम था हिन्दुओं के तीर्थों का विध्वंस करना। उसने हिन्दुओं पर जजिया लगाया; स्त्रियों, चौदह वर्ष के बच्चों और गुलामों को ही इससे छूट मिलती थी। धनवान, लंगड़ों, अंधों, पागलों और महन्तों को भी यह कर देना पड़ता था। एक वार दिल्ली और उसके आसपास के रहने वालों ने इस कर का विरोध भी किया। उन्होंने वड़ी करुणाजनक प्रार्थनाएं भी कीं परन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई। इस कर से बहुत बड़ी रकम शाही खजाने में जाती थी। इससे बचने के लिए वहुत से हिन्दू मुसलमान हो गए। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं से बिक्री कर लिया जाता था और मुसलमानों से नहीं। मुसलमान होने पर उन्हें ऊंचे पद, जायदाद व दूसरे प्रलोभन दिए जाते थे। उसने अपने सब शासकों और ताल्लुकेदारों को आज्ञा दी थी कि अपने हिन्दू पेशकारों को निकाल कर मुसलमानों को भर्ती करें। उसने हिन्दुओं के मेलों को भी रोक दिया और त्यौहारों पर भी रोक-टोक लगाई।

५२
जजिया

शिवाजी के आगरे से निकल भागने से क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने सब हिन्दुओं पर जजिया का कर लगा दिया। इस समाचार से सारे हिन्दुओं में हलचल मच गई। हिन्दू सामूहिक रूप से अपनी फरियाद लेकर बादशाह की सेवा में पहुँचे। बादशाह हाथी पर सवार हो जुमे की नमाज़ पढ़ने को जुम्मा मस्जिद की ओर रवाना हुआ तो लाखों हिन्दू राह पर लोट गए। उन्होंने रो-धोकर अपनी फरियाद बादशाह से अर्ज की पर औरंगजेब यों पसीजने वाला आदमी न था। उसने हाथी आगे बढ़ाने का हुक्म दिया और हाथी नर-नारियों को कुचलता हुआ आगे

बढ़ चला। सिपाहियों के घोड़ों ने भी बहुतों को रौंद डाला। जब यह खबर चारों तरफ फैली तो हिन्दुओं में रोष की ज्वाला धधक उठी।

शिवाजी ने औरंगजेब को एक खत लिखा—

"मैंने सुना है कि मेरे साथ युद्ध करने के कारण खजाने खाली हो जाने से तंग आकर हुजूर ने हिन्दुओं पर जजिया नाम का कर लगा दिया है ताकि शाही खर्च चल सके। जनावे आली, जलालुद्दीन अकबर बादशाह ने ५२ वर्ष तक पूरी शक्ति के साथ राज्य किया। उसने ईसाई, यहूदी, मुसलमान, दादूपन्थी, फलकिया, मलकिया, अन्सारिया, दहरिया, ब्राह्मण और जैनों के साथ समान व्यवहार जारी रखा। उसके हृदय का भाव यह था कि सब प्रजा प्रसन्न और सुरक्षित रहे। इसी कारण वह 'जगद्‌गुरु' नाम से विख्यात हो गया था।

"उसके पश्चात् बादशाह नूरुद्दीन जहांगीर ने दुनियां और उसके निवासियों पर २२ वर्ष तक अपनी शीतल छाया फैलाए रखी। उसने अपना हृदय मित्रों को और हाथ कार्य को सौंपा, जिससे उसे हरेक अभीष्ट वस्तु प्राप्त हुई। बादशाह शाहजहाँ ने ३२ वर्ष तक राज्य किया और अनन्त जीवन का फल प्राप्त किया, जो नेकी और यश का दूसरा नाम है।

"परन्तु हुजूर के राज्य-काल में बहुत से किले और सूबे हाथ से निकल गए हैं, और शेष भी निकल जाँयगे, क्योंकि मेरी ओर से उनके नष्ट करने में कोई कसर न छोड़ी जायगी। आपके राज्य में किसान कुचले गए हैं, हरेक गांव की आमदनी कम हो गई है, एक लाख की जगह एक हजार और एक हजार की जगह दस, और वह भी बहुत कठिनाई से वसूल होता है।

"हुजूर, यदि आप इलहामी किताब और खुदा के कलाम पर विश्वास रखते हों, तो देखिये वहां खुदा को रब-उल-आलमीन (संसार भर का खुदा) कहा है, रब-उल-मुसलमीन (मुसलमानों का खुदा) नहीं कहा।

यह ठीक है कि इस्लाम और हिन्दूधर्म एक-दूसरे के विरोधी भाव के प्रदर्शक हैं। वे असल में चित्र भरने के लिए केवल दो जुदा-जुदा रंग हैं। यदि यह मस्जिद है, तो वहां उसी की याद करने के लिए दुआ की जाती है। यदि वह मन्दिर है, तो उसमें, उसी की तलाश में घण्टा बजाया जाता है। किसी भी मनुष्य के धार्मिक विश्वास या धार्मिक क्रिया-कलाप के साथ दुश्मनी करना पवित्र पुस्तक के शब्दों को बदलने के समान है।

"पूरे न्याय की दृष्टि से देखा जाय, तो जजिया उचित नहीं है। राजनीतिक दृष्टि से केवल उसी दशा में जजिया को माना जा सकता है, जब सुन्दर स्त्रियाँ आभूषणों से अलंकृत होकर राज्य के एक भाग से दूसरे भाग में जा सकें। परन्तु आज जब कि शहर तक लूटे जा रहे हैं, तब खुली आबादी का क्या कहना है ? जजिया केवल अन्यायपूर्ण ही नहीं है, यह भारत में एक नई वस्तु है, और समय के विरुद्ध है।

"यदि आप समझते हों कि हिन्दू प्रजा को दवाना और डराना धर्म है, तो आपको चाहिए कि आप पहले राणा राजसिंह से जजिया कर वसूल करें क्योंकि वह हिन्दुओं का शिरोमणि है। उसके बाद मुझसे भी जजिया लेना आपको कठिन न होगा, क्योंकि मैं आपका सेवक हूँ। परन्तु चींटियों और मक्खियों को सताने में कोई बहादुरी नहीं है।

"मैं आपके नौकरों की अद्भुत स्वामिभक्ति पर आश्चर्यान्वित हूँ कि वह आपको राज्य की ठीक-ठीक दशा नहीं बतलाते और आग को फूस से ढंकना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि आपके बड़प्पन का सूर्य आकाश में चिरकाल तक चमकता रहे।"

और भी कई हिन्दू राजाओं ने औरंगजेब की आँखें खोलने की चेष्टा की परन्तु कुछ सफलता न मिली। जजिया लगाने का हुक्म लेकर हरकारे चारों ओर फैल गए। गरीब प्रजा के लिए तो मानो मृत्यु का सन्देश आ गया। सूबे के शासक अधिक-से-अधिक जजिया उगाहने में

कारगुजारी समझने लगे। कर वसूल करने के लिए प्रायः बल का प्रयोग आवश्यक हो जाता था। इससे चारों ओर हाहाकार मच गया।

जजिया कर लगाने के प्रत्यक्ष फल दो हुए—सरकार की आय बढ़ गई और नए मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होने लगी। बहुत से स्थानों में ६ मास के अन्दर-ही-अन्दर सरकारी खजाने की आय चौगुनी हो गई। औरंगजेब ने प्रान्त-शासकों को लिख दिया था, "तुम्हें अन्य सब प्रकार के करों को माफ करने का अधिकार है, परन्तु जजिया किसी को माफ नहीं किया जा सकता।" गुजरात में केवल जजिया से जो आय थी, वह शेष सारी आय का लगभग ३१ फीसदी थी। इस प्रकार जजिया लगाने का तुरन्त परिणाम यह हुआ कि राज्य की आय बढ़ गई।

दूसरा परिणाम यह हुआ कि नौ-मुसलिमों की संख्या बढ़ने लगी। बहुत से हिन्दू, जो नहीं दे सकते थे, मुसलमान बन। गए औरंगजेब प्रसन्न होता था कि कठोर उगाही से हिन्दू लोग इस्लाम ग्रहण करने लिए बाधित होते थे।

ये दोनों जजिया के प्रत्यक्ष और तत्काल परिणाम थे। परन्तु उसके जो अप्रत्यक्ष और अन्तिम परिणाम थे, वे इनसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे। सोने के अंडे देने वाली चिड़िया जिन्दा रहकर अंडा दे सकती है। यदि उसमें से एक बार ही सब अंडे लेने का प्रयत्न किया जाय तो वह स्वयं ही न रहेगी, फिर अण्डे कहाँ से आएँगे। जजिया का बोझ पड़ने से हिन्दू व्यापारी शहरों को छोड़कर भागने लगे, क्योंकि शहरों में ही वसूली का जोर था। इससे व्यापार थोड़े ही दिनों में चौपट हो गया। छावनियों में विशेष दिक्कत होने लगी। हिन्दू व्यापारियों के भाग जाने से फौजों को अन्न मिलना भी कठिन हो गया। जब प्रान्तों के शासकों या सेनापतियों की ओर से यह सिफारिश आती कि कुछ समय के लिए जजिया वसूल न किया जाय, तो औरंगजेब का जोरदार इन्कार पहुँच जाता। अन्तिम फल यह हुआ कि शहरों का व्यापार

जड़ ने लगा, जिससे केवल जजिया कर की ही नहीं, वस्तुतः हर प्रकार की सरकारी ग्रामदनी घटने लगी।

५३

चौसर का दाव

वसन्त के सुन्दर दिन थे। शिवाजी इन दिनों राजगढ़ में रहकर औरंगजेब की जबर्दस्त संग्राम-योजना की जवाबी तैयारी कर रहे थे। परन्तु जीजाबाई इन दिनों प्रतापगढ़ दुर्ग में थीं। एक दिन सायंकाल के समय एक बुर्ज पर खड़ी वे सूर्यास्त का सुन्दर दृश्य देख रही थीं कि दूर से उन्हें सिंहगढ़ का बुर्ज दीख पड़ा। उसे देखते ही उनके मन में विचार ग्राया कि मेरे शिवा के रहते मेरी ग्राँखों के सन्मुख यह शत्रु का किला खड़ा है। उन्होंने तत्काल एक दूत शिवाजी के पास रवाना किया। शिवाजी को तत्क्षण ही चले ग्राने की ग्राज्ञा थी।

शिवाजी माता का ग्रादेश पाते ही ताबड़तोड़ ग्रा हाजिर हुए। ग्राकर उन्होंने माता की वन्दना की और ग्राज्ञा का कारण जानना चाहा।

जीजाबाई ने कहा—"ग्राग्रो बेटे, एक बाजी चौसर खेलें।"

शिवाजी ने समझा, माता का कोई गूढ़ ग्राशय है। वे चौसर खेलने लगे।

उन्होंने कहा—"माता, पहला पासा ग्राप डालें।"

"नहीं बेटे, राजा की विद्यमानता में कोई पहल नहीं कर सकता। यह राजपदवी का ग्रधिकार है।"

शिवाजी ने हंसकर पासा फेंका पर पासा ग्रच्छा न पड़ा। तब जीजाबाई ने पासा फेंका। वह ग्रच्छा निकला।

शिवाजी ने कहा—"मैं हार गया। कहिए, क्या भेंट करूँ।"

"मुझे सिंहगढ़ चाहिए।"

शिवाजी सन्न रह गए। उन्होंने कहा—"बड़ा कठिन वचन माँगा, माता।"

"पुत्र, यह शत्रु का किला मेरी ही आँखों के सामने शूल बनकर खड़ा है। इसे बिना जय किए तेरा राज्य अधूरा है।"

कुछ देर शिवाजी चुपचाप खड़े सोचते रहे। फिर उन्होंने पालकी लाने की आज्ञा दी और माँ से कहा—"चलिए माताजी, राजगढ़ चलें।"

राजगढ़ में आकर भोर ही शिवाजी ने दरबार किया। सब सामन्त सरदार एकत्र हुए। दरबार में १० पानों का बीड़ा चादर बिछा कर रखा गया। शिवाजी ने कहा—"कौन वीर प्राणों की बाजी लगाकर किला सर करेगा।"

परन्तु सिंहगढ़ का नाम सुनकर सब सन्नाटे में आ गए। प्रथम तो सिंहगढ़ अजेय दुर्ग था। दूसरे इस समय उदयभानु उसका किलेदार था जो शारीरिक बल में राक्षस के समान था। दुर्ग में दुर्दान्त पठानों की सेना थी वह भी अजेय समझी जाती थी। इसके अतिरिक्त इसी दुर्ग में वह पठान सेनापति भी था जिसने तानाजी की बहन को हरण किया था।

जब बड़ी देर तक सभा में सन्नाटा रहा और किसी ने बीड़ा नहीं उठाया तो शिवाजी ने शेर की भाँति दहाड़ कर कहा—"तानाजी मालूसरे को बुलाना होगा। वही वीर यह बीड़ा उठाएगा।" तत्काल एक तीव्रगामी साँड़नी-सवार तानाजी को बुलाने रवाना हो गया जहाँ वे अपने पुत्र के ब्याह के लिए छुट्टी लेकर अभी कुछ दिन पूर्व गए थे।

५४

साँड़नी-सवार का सन्देश

ग्राम में बड़ा कोलाहल था। बालक धूम मचा रहे थे और विविध वस्त्र पहने स्त्री-पुरुष काम-काज में व्यस्त इधर-से-उधर दौड़-धूप

कर रहे थे। तानाजी के पुत्र का विवाह था। द्वार पर नौबत बज रही थी। आगत जनों की काफी भीड़ थी।

सन्ध्या होने में अभी विलम्ब था। एक श्रमिक, शिथिल साँड़नी सवार ने नगर में प्रवेश किया। थोड़े-से बालक कौतूहल-वश उसके पीछे हो लिए। ग्राम के चौराहे पर जाकर उसने अपनी बगल से छोटी-सी तुरही निकाल कर फूंकी। देखते-देखते दस-बीस नर-नारी और बहुत से बालक एकत्र हो गए। सवार ने एक वृद्ध को लक्ष्य करके कहा—"मुझे तानाजी के मकान पर अभी पहुँचना है।"

तुरन्त दस-पाँच आदमी साथ हो लिए। सन्मुख ही तानाजी का घर था। वहाँ पहुँच कर उसने फिर तुरही बजाई। कोलाहल बन्द हो गया। सभी व्यग्र होकर आगन्तुक को देखने लगे। उसने जरा उच्च स्वर से पुकारकर कहा—"छत्रपति शिवाजी महाराज की जय हो। मैं तानाजी के पास महाराज का अत्यावश्यक सन्देश लेकर आया हूँ। तानाजी अभी चलकर महाराज से मुलाकात करें।"

उपस्थित जन-मण्डल ने चिल्लाकर कहा—"छत्रपति महाराज की जय।"

हल्दी से शरीर लपेटे, व्याह का कंगना हाथ में बाँधे पुत्र को छोड़कर तानाजी बाहर निकल आए। धावन ने उन्हें पत्र दिया। पत्र पढ़कर तानाजी क्षण भर को विचलित हुए। इसके बाद ही उन्होंने अग्निमय नेत्रों से उपस्थित जन-समूह को देखा। वह उछलकर एक ऊँचे स्थान पर चढ़ गए, और उन्होंने गंभीर व उच्च स्वर से कहना आरम्भ किया—"सज्जनो! महावीर छत्रपति महाराज ने मुझे इसी क्षण बुलाया है। यह शरीर और प्राण महाराज का है। फिर वह्नि के प्रतिशोध का भी यही महायोग है। मैं इसी क्षण जाऊँगा। आप लोग कल प्रातःकाल ही प्रस्थान करें। विवाह-समारोह अनिश्चित समय के लिए स्थगित किया गया।"

तानाजी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए चीते की भाँति उछलकर कूद पड़े और घर में चले गए। कुछ ही क्षण बाद वह अपने प्यारे बर्छे और विशाल तलवार के साथ सज्जित होकर घोड़े पर सवार हुए। विवाह का आनन्द-समारोह स्तब्ध हो गया। गुरुजनों को प्रणाम कर पुत्र को छाती से लगा उन्होंने बढ़ते हुए सन्ध्या के अन्धकार में डूबते हुए सूर्य को लक्ष्य कर उन दुर्गम पर्वत-उपत्यकाओं में घोड़ा छोड़ दिया।

५५

बीड़ा-ग्रहण

तानाजी के आने पर शिवाजी ने उन्हें माता की आज्ञा सुना दी। माता की आज्ञापालन कर तानाजी ने बीड़ा आदरपूर्वक उठा पगड़ी में रख लिया। जीजाबाई ने आकर वीर की आरती उतारी। दूसरे ही दिन एक हजार जुझाऊ वीरों की सेना लेकर उन्होंने सिंहगढ़ की ओर प्रस्थान किया और एक सघन जङ्गल में डेरा डाला।

सिंहगढ़ किले में समाचार ले जाने पहुँचाने वाले लोग कोली और कुम्हार लोग थे। उन्हें हर समय किले से बाहर और बाहर से किले में आने-जाने की छूट थी। तानाजी ने उनसे मिलकर काम निकालने की युक्ति सोची। दैवयोग से अनुकूल अवसर भी मिल गया। कोलियों के सरदार रायजी की पुत्री का ब्याह पूना निवासी दौलतराय के पुत्र के साथ था। दौलतराय तानाजी के परिचित थे। दौलतराय की सहमति से तानाजी एक कलावन्त की हैसियत से बारात में सम्मिलित हो गए। दौलतराय ने तानाजी को प्रसिद्ध कलावन्त गोन्धाजी तोताराम बताया। जब उन्होंने मधुर स्वर में शिवाजी का स्तवन गाया तो श्रोता मुग्ध होकर शिवाजी की चर्चा करने लगे। गायन का अभिप्राय था कि शिवाजी शिव के अवतार हैं। अम्बाबाई

की प्रार्थना पर जीजाबाई के गर्भ से मुगलों का सर्वनाश करने को उन्होंने अवतार लिया है। वे गौ-ब्राह्मण के रक्षक हैं। अन्तिम चरण गाया—"जे जे मोगलाँच चाकर थूरे थूमचा जिनगी बर।"

गाने के मधुर स्वर और हृदयग्राही भाव सुनकर रावजी मुग्ध हो गए और तानाजी को अंक में भर कर कहा—"मांग, क्या मांगता है।"

तब एकान्त में ताना ने अपना परिचय देकर रावजी से कोलियों-कुम्हारों की सहायता मिलने का वचन लिया।

कृतकृत्य होकर तानाजी अपनी छावनी में लौट आए।

तीज का चन्द्रमा उदय हुआ। उसकी क्षीण चाँदनी पर्वतों पर फैल गई। आकाश में असंख्य नक्षत्र उदित थे। तानाजी छावनी के एकान्त भाग में खड़े हुए अजेय सिंहगढ़ की ओर ध्यान से देख रहे थे। उन्होंने अकस्मात् देखा—एक मनुष्य मूर्ति किले से निकल कर धीरे-धीरे पहाड़ से नीचे उतर रही है। तानाजी ने अपनी कमर में लटकती तलवार को भलीभाँति परखा और चुपचाप उस ओर को चल दिए जिधर वह मनुष्य आ रहा था। निकट पहुँच एक झाड़ी में छिप गए और अवसर पाकर तलवार उसके कण्ठ पर रखकर कहा—"सच कह, तू कौन है?"

वह पुरुष प्रथम तो तनिक घबराया। फिर उसने कहा—"मैं राजपूत हूँ, मेरा नाम जगतसिंह है। आप कौन हैं जो अकारण ही शत्रुवत् व्यवहार कर रहे हैं?"

"मैं जानना चाहता हूँ कि तुम शत्रु हो या मित्र।"

"यदि आप इस किले के निवासी हैं तो मैं आपका शत्रु हूँ। यदि नहीं हैं तो मित्र हूँ।"

"जब किले वाले तुम्हारे शत्रु हैं तब तुम किले में क्यों गए थे?"

"यह बात मैं केवल मित्र को बता सकता हूँ।"

"तो मित्र समझ कर ही बताओ।"

"किन्तु आप कौन हैं ? आपका नाम क्या है ?"

"अभी इतना ही जानो कि मित्र हूँ। धोखा नहीं होगा।"

"आप केवल यह बता दीजिए कि क्या आप महाराज शिवाजी के आदमी हैं ?"

"तुम्हारा अनुमान ठीक है।"

"तब सुनिए। दुरात्मा उदयभानु इस दुर्ग का स्वामी है। उसके पिता उदयपुर के एक सामन्त थे। उन्हीं का बाँदी पुत्र यह है। इसने उदयपुर के एक बड़े सामन्त की पुत्री कमलकुमारी से जबर्दस्ती ब्याह करना चाहा था। पर उसके पिता ने घृणापूर्वक अस्वीकार कर दिया। इस पर वह आगरे औरङ्गजेब के पास पहुँचा और अपने को उदयपुर का राजकुमार बताकर मुसलमान हो गया जिससे औरङ्गजेब इस पर प्रसन्न हो गया और महाराज जसवन्तसिंह के स्थान पर यहाँ भेज दिया। उधर कमलकुमारी का विवाह भी हो गया और वह विधवा भी हो गई। जिस समय यह सेना सहित मेवाड़ की सीमा पार कर रहा था। कमलकुमारी सती होने जा रही थी। इसने तत्काल धावा मारा और कमलकुमारी को मार-काट करके ले भागा। उसके साथ मेरी पत्नी भी थी। वह भी उसने पकड़ ली और दोनों को यहाँ ले आया तथा दोनों को बन्दी करके यहाँ रखा है। बादशाह ने उसका विवाह रोक दिया था। पर अब आज्ञा मिल गई है और कल पहर रात गए विवाह होगा। उसके इस घृणित काम से सभी हिन्दू-मुसलमान उससे घृणा करते हैं। मैंने अपना वैर चुकाने को उसकी नौकरी की है। बस, यही मेरी दास्तान है।"

सब हाल सुनकर तानाजी ने भी अपना अभिप्राय कह सुनाया। सुनकर राजपूत ने कहा—"मैं आपकी सहायता करूँगा। किन्तु आपको मेरी पत्नी को मुक्त कराना होगा।"

"मैं तलवार की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ, पर तुम्हें भी मेरा एक काम करना होगा। किले में मेरा एक शत्रु है उसे मुझे पहचनवा देना होगा।"

"वह कौन है ?"

"खान अब्दुस्समद फौजदार।"

"मैं उसे बखूबी जानता हूँ। वह उदयभानु का दाहिना हाथ है।"

"मैं तलवार की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ।"

दोनों में और भी गुप्त परामर्श हुए। राजपूत ने कहा—"कल एक पहर रात जाने पर कल्याण बुर्ज पर मेरा पहरा है। मेरा साथी एक तुर्क है। उससे मैं निबट लूंगा। आप जैसे बने एक पहर रात गए बुर्ज पर चढ़ जाँय।"

"अवश्य आऊँगा, मित्र" कहकर तानाजी ने जगतसिंह को विदा किया।

५६
अभियान

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे में सैनिकों का प्रशान्त दल चुपचाप आगे बढ़ा जा रहा था। सँकरी पगडण्डी के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे सरकण्डे के झाड़ खड़े थे। तारों के क्षीण प्रकाश में घोड़ों को कष्ट होता था, पर सेना की अबाध गति जारी थी।

हठात् सैनिक रुक गए। अग्रगामी सैनिक ने पंक्ति से पीछे हटकर कहा—"श्रीमान्, बस यही स्थान है।"

"आगे रास्ता नहीं ?"

"नहीं, श्रीमान् !"

"तब यहाँ से क्या उपाय किया जाय ?"

"इस ढालू चट्टान पर चढ़ना होगा।"

"यह वहुत कठिन है।"

"परन्तु दूसरा उपाय ही नहीं है।"

"तव चढ़ो।" तानाजी चट्टान को दोनों हाथों से दृढ़ता से पकड़ कर खड़े हो गए।

देखते-देखते दूसरा सैनिक छलाँग मारकर चट्टान पर हो रहा, और सेना-नायक को खींच लिया। उस बीहड़ और सीधी खड़ी चट्टान पर धीरे-धीरे ये हठी सैनिक उस दुर्भेद्य अन्धकार में चढ़ने लगे। कल्याण बुर्ज के नीचे आकर तानाजी ने कहा—"अब कमन्द लाओ।"

सन्दूकची में से शिवाजी की प्रसिद्ध घोर पड़ 'यशवन्त' गोह निकाली गई। उसके माथे पर तानाजी ने चन्दन का तिलक लगाया। गले में माला पहनाई और क़मन्द में बाँधकर फेंका। परन्तु गोह स्थान पर न पहुँच सकी, वापस आ गई। तानाजी ने क्रोध करके कहा—"इस वार भी यशवन्त लौट आया तो इसे मारकर खा जाऊँगा।"

उन्होंने पूरे जोर से उसे ऊपर फेंका। गोह ने बुर्ज पर पंजे गाढ़ दिए। तानाजी दाँतों में तलवार दवाए बुर्ज पर पहुँच गए। वहाँ जगतसिंह तैयार था। उसका साथी तुर्क मरा पड़ा था।

रस्सियों को बुर्ज के कंगूरों में अटका दिया गया। अब एक के बाद दूसरा और फिर तीसरा। इस प्रकार बारह सैनिक बुर्ज पर पहुँच गए, इसी समय कमन्द टूट गया। नीचे के सिपाही नीचे रह गए। दुर्ग में सन्नाटा था। सब चुपचाप दीवारों की छाया में छिपते हुए फाटक की ओर बढ़ रहे थे। फाटक पर प्रहरी असावधान थे। एक ने सजग होकर पुकारा—"कौन?"

दूसरे ही क्षण एक तलवार का भरपूर हाथ उस पर पड़ा। सभी प्रहरी सजग होकर आक्रमण करने लगे। देखते-ही-देखते किले में

कोलाहल मच गया। जगह-जगह योद्धा शस्त्र बाँधने और चिल्लाने लगे तथा मशालों के प्रकाश में इधर-उधर घूमने लगे।

बारहों व्यक्ति चारों ओर से घिर गए। उनके आगे तानाजी और जगतसिंह थे। वे भीम वेग से फाटक की ओर बढ़े जा रहे थे। प्रहरी मन में भयभीत थे। तानाजी ने एक बार प्रचण्ड जयघोष किया और उछलकर फाटक पर चढ़ बैठे। साथियों ने प्रहरियों को तलवार के वल चीर डाला, तब तानाजी ने साहस करके फाटक खोल दिया। हर हर महादेव का घोष करती मराठों की सेना सूर्याजी के नेतृत्व में किले में घुस गई।

इस समय महल में उदयभानु के ब्याह की तैयारी हो रही थी। काजी साहेव आ चुके थे। कमलकुमारी सिसक-सिसक कर रो रही थी। काजी साहेब उसे दम-दिलासा दे रहे थे। इसी समय हर हर महादेव का शब्द सुनकर उदयभानु चौंक पड़ा। जब उसने सुना कि शत्रु किले में घुस आए हैं तब उसने चीख कर कहा—"सिद्दी हलाल को भेजो, चन्द्रावल हथिनी को तैयार करो। खाँ साहेब को खबर करो"। काजी से उसने कहा, "झटपट निकाह पढ़ो।"

परन्तु सिद्दी हलाल का जगतसिंह ने सिर काट कर महल में फेंक दिया, इसी समय तानाजी ने हाथी की एक सूंड़ काट कर उसके पैरों को जख्मी कर दिया। हाथी चिंघाड़ता हुआ भागा। तब उदयभानु ने अपने वारह वेटों को भेजा। परन्तु वे भी देखते-देखते काम आए। मराठे ऐसी प्रचण्डता से तलवार चला रहे थे कि वड़े-वड़े सूरमाओं का धैर्य भंग हो रहा था। निकाह सम्पन्न नहीं हुआ। जगतसिंह और तानाजी महल में घुस आए। अन्ततः उदयभानु तलवार लेकर उनसे जूझने लगा। इसी समय मराठा वीरों ने महल में आग लगा दी। भयानक चीत्कार और रोना-पीटना मच गया। अवसर पाकर उदयभानु ने ताककर तलवार का भरपूर हाथ तानाजी के सिर पर दिया, तानाजी

का भी एक भरपूर हाथ पड़ा। दोनों वीर एक साथ गिर कर गुथ गए : इसी समय सूर्याजी ने उदयभानु का सिर काट लिया।

हर-हर महादेव करती हुई महाराष्ट्रीय सेना मारकाट करने लगी। बड़ा भारी घमासान मच गया। रुण्ड-मुण्ड डोलने लगे। घोड़ों की चीत्कार, योद्धाओं की ललकार और तलवारों की झनकार ने भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया। इसी समय खान पठानों की सेना को लेकर आगे बढ़ा। जगतसिंह ने संकेत किया।

तानाजी ने ललकार कर कहा—"इधर आ यवन सेनापति, मद की भाँति युद्ध कर। आज बहुत दिन का लेन-देन चुकाऊँगा।"

यवन सेनापति ने जोर से कहा—"काफिर, मैं यहाँ हूँ। सामने आ, गरीब सिपाहियों को क्यों कटाता है।"

तानाजी उछलकर खान के सन्मुख गए। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। दोनों तलवार के धनी थे। पर तानाजी घायल थे। मशालों धुंधले प्रकाश में दोनों योद्धाओं का असाधारण युद्ध देखने को सेना स्तब्ध खड़ी हो गई। तानाजी ने कहा—"सेनापति, पहले तुम वार करो, आज मैं तुम्हें मारूँगा।"

"काफिर, अभी तेरे टुकड़े किए डालता हूँ।" उसने तलवार का भरपूर वार किया।

"अरे यवन, आज बहुत दिन की साध पूरी होगी।" बदले में तलवार का जनेवा हाथ फेंकते हुए तानाजी ने कहा—"लो।"

सेनापति के मोढ़े पर तलवार लगी, और रक्त की धार बहने लगी। उसने तड़पकर एक हाथ तानाजी की जाँघ में मारा। जाँघ कट गई।

तानाजी ने गिरते-गिरते एक बर्छा सेनापति की छाती में पार कर दिया। दोनों वीर घोड़ों से गिर पड़े।

अब फिर सेना में घमासान मच गया। उदयभानु की राजपूत सेना और यवन-सेना परास्त हुई। सूर्योदय से पूर्व ही किले पर भगवा झण्डा फहराने लगा। तोपों की गर्जना से पहाड़ियाँ थर्रा उठीं।

लाशों के ढेर से तानाजी का शरीर निकाला गया। अभी तक उसमें प्राण था। थोड़े उपचार से होश में आकर उन्होंने कहा—"क्या किला फतह हो गया ?"

"हाँ महाराज।"

"यवन सेनापति क्या जीवित है ?"

यवन सेनापति भी जीवित था। उसका शरीर भी वहीं था। तानाजी ने क्षीण स्वर में पुकारा—"यवन सेनापति !"

"काफिर ?"

"पहचानते हो ?"

"दुश्मन को पहचानना क्या है ? तुम कौन हो ?"

"पन्द्रह वर्ष प्रथम जिसे आक्रान्त करके तुमने उसकी बहन का हरण किया था।"

सेनापति उत्तेजना के मारे खड़ा हो गया। फिर धड़ाम से गिर गया, उसके मुख से निकला—"तानाजी ?"

"आज बहन का बदला मिल गया।"

यवन-सेनापति मर रहा था, उसका श्वास ऊर्ध्वगत हो रहा था, और आँखें पथरा रही थीं। उसने टूटते स्वर में कहा—"तुम्हारी हमशीरा और बच्चे इसी किले में हैं, उनकी हिफाजत... ।"

यवन-सेनापति मर गया। तानाजी की दशा भी अच्छी नहीं थी, ये शब्द मानो वह सुन नहीं सके। उन्होंने टूटते स्वर में कहा—"महाराज से कहना, तानाजी ने जीवन सफल कर लिया। महाराज बहिन की रक्षा करें तथा जगतसिंह का वचन पूरा करें।"

तानाजी ने अन्तिम श्वास ली।

५७

गढ़ आया, पर सिंह गया

शुभ मुहूर्त्त में छत्रपति महाराज ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया। प्राङ्गण में विषण्ण-वदन सैनिक नीची गर्दन किए खड़े थे। घोड़े से उतरते हुए शिवाजी ने कहा—"मेरा मित्र तानाजी कहाँ है ?"

एक अधिकारी ने गम्भीर मुद्रा से कहा—"वह वीर वहाँ बरामदे में श्रीमान् की अभ्यर्थना को बैठे हैं।"

अधिकारी रोता हुआ पीछे हट गया। महाराज ने पैदल आगे बढ़कर देखा।

वह निश्चल मूर्त्ति सैकड़ों घाव छाती और शरीर पर खाकर वीरासन से विराजमान थी। महाराज की आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे। उन्होंने शोक-कम्पित स्वर में कहा—"गढ़ आया, पर सिंह गया।"